₹ १००/- वार्षिक

दिव्य जीवन

जब ऐलोपैथी, होमियोपैथी, क्रोमोपैथी, नेचुरोपैथी, आयुर्वेद आदि सभी चिकित्सा-पद्धतियाँ रोग-निवारण में असफल सिद्ध होती हैं, तब केवल नामोपैथी (भगवान् का नाम-स्मरण) ही है जो आपकी रक्षा करती है। भगवान् का नाम ऐसी संजीवनी औषधि है जो सार्वभौम है, सर्वाधार है और सर्वरोगहारी है। मनुष्य जब दुःखी और निराश होता है, हताश और उदास होता है, दैनिक सांसारिक युद्ध में हार जाता है, तब उसमें उत्साह एवं आनन्द भर देने वाला एकमात्र साधन ईश्वर-नाम ही है।

—स्वामी शिवानन्द

दिसम्बर २०२०

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्त:शक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

—स्वामी शिवानन्द

सेवा करें, प्रेम करें, दान दें

तुच्छ तथा सम्मान-प्राप्त कार्यों में विभेद न लायें। यदि कोई आदमी अपने शरीर के किसी हिस्से में तीव्र वेदना का अनुभव कर रहा हो, तो उसके उस पीड़ित भाग को धीरे-धीरे दबाइए। ऐसा अनुभव कीजिए कि आप रोगी के शरीर में भगवान् की सेवा कर रहे हैं। अपने इष्ट-मन्त्र का भी जप कीजिए। यदि आप सड़क के किनारे किसी मनुष्य अथवा किसी जानवर के शरीर से रुधिर प्रवाहित होते देखें, तो अपनी कमीज के ऊपरी हिस्से में से कुछ कपड़ा फाड़ कर उसके घाव पर पट्टी बाँधिए। रेलवे-स्टेशन पर गरीब कुलियों के साथ किसी भी प्रकार का झगड़ा आदि न कीजिए। उदार तथा दानशील बनिए। सदा अपनी जेब में कुछ पैसे रखिए तथा उनको गरीबों और असहायों में बाँट दीजिए।

हृदय के शुद्ध होने पर मन स्वतः ही ईश्वर की ओर लग जायेगा। शुद्ध प्रेम, आत्मार्पण तथा उपासना के द्वारा अन्ततः यह ईश्वर में ही विलीन हो जाता है।

—स्वामी शिवानन्द

दिव्य जीवन

Vol. XXXI	दिसम्बर २०२०	No. 5

प्रश्नोपनिषद्

प्रथम प्रश्न

कबन्धी एवं पिप्पलाद

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स
तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते।
रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ।।४।।

४. उससे ऋषि पिप्पलाद ने कहा, 'प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा वाले प्रजापति ने तप किया। तप करके उन्होंने एक युगल (जोड़े) की रचना की (तथा यह विचार किया) कि ये रयि एवं प्राण मेरी नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करेंगे।'

(पूर्व–अंक से आगे)

महागुरुवर्णमातृकास्तोत्रम्

MAHAGURU-VARNA-MATRIKASTOTRAM

(ज्ञानभास्कर महामहोपाध्याय श्री एस. गोपाल शास्त्री)

धात्रीतुल्यगुणस्य साधुजनतात्राणे धिया गीष्पते:
धीराग्रेसरसेवितस्य धरणीभूषामणे: श्रीनिधे:।
नादब्रह्मरसायनस्य नमतां कल्पद्रुकल्पस्य ते
नम्यांघ्रिं शरणंगतान् करुणया त्रायस्व न: सद्गुरो! ।।१७।।

१७. हे श्रद्धेय गुरुदेव! आप पृथ्वी माता के समान दीनजनों की रक्षा करते हैं, आपका प्रज्ञावैभव देवगुरु बृहस्पति के समतुल्य है, आप सर्वश्रेष्ठ विद्वज्जनों द्वारा पूजित–सेवित हैं, आप इस धरा के बहुमूल्य आभूषण सम हैं, श्रीनिधि हैं, अपने भक्तवृन्द के लिए दिव्य कल्पवृक्ष हैं तथा आप प्रणव के आनन्दरस में सदैव निमग्न रहते हैं। हमने आपके वन्दनीय–आराधनीय चरणकमलों का आश्रय ग्रहण किया है, हम शरणापन्न जनों की करुणापूर्वक रक्षा करिए।

गौरीकान्ततपोलसद्धिमगिरौ गंगाप्रवाहोज्ज्वलत्–
सान्द्रानन्दकुटीरपुण्यनिलयावासप्रिये विश्रुते।
लोकक्षेमकृति प्रशस्तकरुणे ज्ञानामृताम्भोधरे
दिव्यज्योतिषि सद्गुरौ मम मनो भूयाद्विलीनं सदा ।।१८।।

१८. मेरा मन सदैव उन श्री गुरुदेव में लीन रहे जो दिव्यप्रभा से विभासित हैं, ज्ञानामृत की वृष्टि करने वाले मेघ हैं, जिनकी असीम करुणा का यशोगान सर्वत्र होता है, जो अपने लोकमंगलकारी कार्यों के लिए सुविख्यात हैं तथा जिन्हें भगवान् शिव द्वारा कठोर तप से परिपूत हिमालय क्षेत्र में माँ गंगा के पावन तट पर स्थित अपनी पवित्र कुटिया 'आनन्द कुटीर' में निवास करना अत्यन्त प्रियकर है।

(क्रमश:)

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

क्रिसमस सन्देश

भगवद्-अनुग्रह की प्राप्ति[१]

(सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

समस्त जीवन का एक ही स्रोत है। भौतिक जगत् में दिखने वाले भेद एवं विभिन्नताएँ उस एक जीवन-शक्ति की ही विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। कोई भी व्यक्ति पूर्णतया एकाकी एवं पूर्णतया स्वतन्त्र रहने में सक्षम नहीं है। अंश एवं अंशी (पूर्ण) में एक अन्तर्सम्बन्ध होता है और यह तथ्य प्रत्येक व्यक्ति एवं परिस्थिति के लिए सत्य है। जीवन एक सम्पूर्णता है। अत: किसी प्रकार का एकपक्षीय विकास, विकास न हो कर विकृति ही है।

भगवान् सृष्टि के कण-कण में विराजमान हैं; हम सबको इस परम सत्य को स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में सम्पूर्ण विश्व एक सम्भावना के रूप में विद्यमान है। अत: एक व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया निश्चित रूप से उसके व्यक्तित्व के भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों के विकास की प्रक्रिया है। विभिन्न व्यक्तियों एवं उनके व्यक्तित्वों तथा विभिन्न सिद्धान्तों एवं उनके प्रतिपादन में दिखने वाली भिन्नताएँ वस्तुत: उनके एक ही स्रोत एवं उद्देश्य पर आधारित हैं। इसी प्रकार सन्त-महापुरुषों के भिन्न-भिन्न उपदेशों एवं शिक्षाओं का स्रोत एवं उद्देश्य भी एक ही है। समस्त मनुष्यों के जीवन में एक सामान्य केन्द्र है जिससे उनका सम्पूर्ण जीवन संचालित होता है। वह सर्वोच्च केन्द्र है—जीवन में सर्वशक्तिमान् ईश्वर को उनकी विविध अभिव्यक्तियों एवं क्रियाओं सहित स्वीकार करना।

मनुष्य के जीवन में व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर होने वाली चिरस्थायी प्रगति, उन्नति, समृद्धि एवं कल्याण धर्माचरण का परिणाम है। इस प्रगति एवं कल्याण को निर्धारित करने वाले निश्चित सिद्धान्त हैं जिन्हें जानने तथा समझने के लिए कुछ शर्तों का पालन आवश्यक है। इसी प्रकार से मनुष्य के जीवन में भगवान् के प्राकट्य तथा धरती पर भगवद्-साम्राज्य की स्थापना हेतु भी एक आवश्यक शर्त अथवा परिस्थिति है।

वह शर्त है—वैयक्तिक अहंकार का पूर्ण नाश तथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दिव्य रूपान्तरण। अहंकार की विभिन्न परिभाषाएँ हैं। उनमें से एक यह भी है कि अहंकार असंख्य असत्यों, विपत्तियों एवं कष्टों का मूल कारण है। अहंकार को इसकी विशिष्ट प्रवृत्तियों, गुणों एवं स्वभाव द्वारा जाना जा सकता है। जिस प्रकार सत्य एवं धर्म के पथ पर चलकर भगवान् का ज्ञान प्राप्त होता है; उसी प्रकार जो प्रवृत्ति मनुष्य को उसके पतन की ओर सरलता से ले जाये, उसे 'अहंकार' के रूप में जाना जा सकता है। अहंकार मिथ्या है तथा यह मनुष्य मन की ऐसी विशिष्ट अवस्था है जहाँ वह पूर्णत: स्वकेन्द्रित हो केवल अपने ही लाभ अथवा उत्थान के विषय में सोचता है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है कि यह अहंकारपूर्ण स्वार्थपरायणता वैयक्तिक है अथवा सामाजिक, राष्ट्रीय है अथवा अन्तर्राष्ट्रीय।

परम सत्य एवं मिथ्या अहंकार, धर्म एवं अधर्म के मध्य सतत संघर्ष चलता है। समस्त राजनीतिक अथवा सामाजिक संघर्ष, निजी कलह, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध तथा सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाएँ वास्तव में उस भयानक एवं स्थायी युद्ध के ही बाहरी लक्षण अथवा अभिव्यक्तियाँ हैं जो धर्म एवं अधर्म तथा परम सत्य एवं मिथ्या अहंकार के मध्य सतत चलता है। अहंकार से भरा मनुष्य जब भी किसी समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करता है, तब वह समस्या और अधिक जटिल होती जाती है।

१. 'द डिवाइन लाइफ' १९६२ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

जैसा कि पूर्वत: कहा गया है कि अहंकार मिथ्या है, अत: इसकी समस्त उपलब्धियाँ एवं सफलताएँ भी मिथ्या हैं। परन्तु हमें यह समझना चाहिए कि हम उस परम सत्य 'भगवद्-तत्त्व' के सन्दर्भ में ही इसे मिथ्या कह रहे हैं, किसी अन्य सन्दर्भ में नहीं। एकमात्र भगवान् ही परम सत्य हैं, शाश्वत एवं अपरिवर्तनीय हैं तथा मनुष्य के कल्याण एवं आनन्द के स्रोत हैं। मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दिव्य रूपान्तरण तथा अहंकार एवं इसकी प्रबलता के लिए उत्तरदायी समस्त कारणों एवं परिस्थितियों का नाश ही मोक्ष का मार्ग है। इसी दिव्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न युगों के सन्त-महापुरुषों ने, धर्मगुरुओं ने हर सम्भव प्रयास किया। भगवान् जीसस ने अपने जीवन की आहुति देकर मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

जीसस क्राइस्ट कहते हैं, ''विनीत-विनम्र व्यक्ति धन्य हैं क्योंकि भगवद्-साम्राज्य उनका ही है।'' वे आगे कहते हैं, ''वे मनुष्य धन्य हैं जो धर्म की, सदाचारिता की प्रबल आकांक्षा करते हैं, क्योंकि वे इसे प्राप्त करेंगे।'' प्रथम उपदेश अहंकारहीन मनुष्य को भगवद्-साम्राज्य की प्राप्ति का वचन देता है। विनम्र मनुष्य वे हैं जिन्होंने स्वयं को सभी प्रकार के अहंकार से पूर्णतया मुक्त कर दिया है। जिन्हें अपनी धन-सम्पदा, कुल एवं विद्वत्ता पर गर्व है, ऐसे अहंकारी मनुष्यों के लिए भगवान् के साम्राज्य में कोई स्थान नहीं है। ऐसे मनुष्य मात्र अन्य मनुष्यों की प्रशंसा पाने, संसार में प्रसिद्धि तथा भौतिक समृद्धि अर्जित करने में लगे रहते हैं, उन्हें ये सब प्राप्त हो जाता है, परन्तु इन सांसारिक वस्तुओं की क्षणभंगुरता से अन्तत: उन्हें दु:ख ही प्राप्त होता है। विनीत-विनम्र मनुष्य अपने लिए कुछ नहीं चाहते हैं। वे स्वभावत: ज्ञानसम्पन्न होते हैं यद्यपि वे इसके प्रति जागरूक नहीं होते हैं। जब उन्हें उनके ज्ञानवैभव से परिचित कराया जाता है, तो वे उसे भगवान् का अनुग्रह ही बताते हैं। उनमें लेश मात्र भी अहंकार नहीं होता है, अत: उनके माध्यम से भगवद्-कृपा का निर्बाध प्रवाह होता है। निश्चयमेव, भगवद्-साम्राज्य उनका ही है।

द्वितीय उपदेश का अर्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धर्म से अभिप्राय 'भगवदीय इच्छा' है जो कि सर्वव्यापक है। भगवद्-कृपा मनुष्य के हृदय को परिपूरित करने, उसे भगवदीय इच्छा के अनुकूल बनाने तथा इस प्रकार उसका उत्थान-कल्याण करने हेतु सदैव तत्पर है। परन्तु मनुष्य की अहंकारपूर्ण स्वेच्छाचारिता उसके हृदय में भगवद्-कृपा के प्रवेश को रोकती है। भगवान् के अनुग्रह को प्राप्त करना तथा अपने व्यक्तित्व को उनकी दिव्यता से पूरित करना अत्यन्त सरल है। आपको इसके लिए तीव्र इच्छा एवं आकांक्षा मात्र करनी है। आपमें दिव्य बनने हेतु गहन उत्कण्ठा होनी चाहिए। आपको भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि वे आप पर अनुग्रह की वृष्टि करें। वे ही वास्तव में धन्य हैं जो इस प्रकार भगवद्-कृपा प्राप्त करते हैं। क्योंकि भगवदीय इच्छा अर्थात् धर्म के पालन द्वारा ऐसे मनुष्य भगवदीय विधान के जीवन्त स्मारक के रूप में जीवन व्यतीत करेंगे तथा अन्य मनुष्यों को भी उनके कल्याण हेतु प्रेरित करते हुए पृथ्वी को स्वर्ग में परिवर्तित करेंगे।

क्रिसमस के पावन अवसर पर, हम सभी अपने भीतर जीसस क्राइस्ट के आदर्श के प्रति जाग्रति उत्पन्न करें तथा उनके अविस्मरणीय दिव्य सन्देश, 'पर्वत पर दिये गये उपदेश (Sermon on the Mount)' में वर्णित दिव्य जीवन व्यतीत करने का दृढ़ संकल्प करें। यह अत्यावश्यक है कि भगवान् जीसस के जन्मदिवस के इस आनन्दपूर्ण उत्सव के समय हम उनके दिव्य जीवन एवं सन्देश पर गहन चिन्तन-मनन करें, क्योंकि इसमें ही विश्व-शान्ति एवं विश्व-बन्धुत्व का रहस्य निहित है। भगवान् जीसस के आशीर्वाद आप सब पर हों।

(शिवानन्दनगर, ८ दिसम्बर १९६२)

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

श्रीमद्भगवद्गीता का विशिष्ट योग[१]

(परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज)

सात सौ श्लोकों का 'दिव्य गीत' एवं ज्ञान का बहुमूल्य भण्डार श्रीमद्भगवद्गीता एक सर्वोत्कृष्ट शास्त्र है। यह सर्वशक्तिमान् प्रभु श्री कृष्ण द्वारा पाँच हजार वर्ष पूर्व जगत् को प्रदान किया गया। उस शुभ दिन से ही श्रीमद्भगवद्गीता मानवता के लिए भगवद्-प्राप्ति के पथ को सतत आलोकित एवं प्रकाशित कर रही है। यह अद्भुत ग्रन्थ जो व्यावहारिक जगत् में होने वाली दिन-प्रतिदिन की समस्याओं के विषय में मार्गदर्शन देता है, हमें स्मरण कराता है कि हमारा महानतम मित्र एवं शत्रु हमारे भीतर ही है। यह हमारा मन है। जब मन हमारे उच्चतर दिव्य स्वरूप के सम्पर्क में होता है अर्थात् सात्त्विक विचारों से पूर्ण होता है, तब यह हमारा परम मित्र होता है; परन्तु जब यही मन सांसारिक वस्तु-पदार्थों की इच्छाओं से भरे निम्नतर स्वभाव से सम्बद्ध होता है, तब यह हमारा घोर शत्रु होता है। यह सबका सामान्य अनुभव है कि हमारे भीतर उच्चतर दिव्य स्वभाव एवं निम्नतर पाशविक स्वभाव दोनों विद्यमान हैं। कभी-कभी जब मन उच्चतर स्वभाव से जुड़ता है, तो मनुष्य स्वयं को दिव्य अनुभव करता है। यही मन जब कभी निम्नतर स्वभाव से जुड़ता है तो मनुष्य असुर बन जाता है। परन्तु सर्वाधिक विकट स्थिति यह है कि प्राय: मन में ऊर्ध्वगामी एवं अधोगामी प्रवृत्तियाँ एक ही समय पर कार्यशील होती हैं इसलिए व्यक्ति स्वयं विस्मित एवं भ्रमित हो जाता है कि वह वास्तव में दिव्यत्व से सम्पन्न मनुष्य है अथवा असुरत्व से भरा एक निम्न कोटि का प्राणी।

सम्पूर्ण विश्व में असंख्य मुमुक्षु साधकवृन्द के लिए यह अद्भुत ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' सर्वाधिक मूल्यवान् एवं महत्त्वपूर्ण है। इसमें ही यह कहा गया है कि यह दिव्य प्रबोधन की प्राप्ति हेतु की जाने वाली योग-साधना का सर्वोच्च ग्रन्थ है। यह सर्वश्रेष्ठ योगशास्त्र है।

श्रीमद्भगवद्गीता का प्रत्येक अध्याय योग-साधना के अभ्यास हेतु उन अमूल्य निर्देशों-उपदेशों से पूर्ण है जो योग-पथ को प्रकाशित करते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता योगमय जीवन की श्रेष्ठतम व्याख्या प्रस्तुत करती है। यह प्रस्तुति समग्र एवं सर्वसमावेशी है; इसमें योग-साधना के किसी भी पक्ष को अस्पर्शित नहीं छोड़ा गया है। भगवान् के साथ योग अर्थात् एकत्व की प्राप्ति ही श्रीमद्भगवद्गीता की मुख्य विषयवस्तु है जो भगवान् श्री कृष्ण के इस दिव्य उद्बोधन से अभिव्यक्त होती है, ''**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्**—इस अनित्य एवं दु:खमय जगत् में जन्म प्राप्त कर मुझ ईश्वर का भजन कर।'' वे अन्यत्र आदेशात्मक रूप में कहते हैं, ''**तस्मात् योगी भव अर्जुन**—इसलिए हे अर्जुन, योगी बनो।'' इन प्रेरणाप्रद उपदेशों के पश्चात् योग-साधना की समस्त अवस्थाओं एवं पक्षों की सरल एवं सुबोध व्याख्या की गयी है। इस अष्टादशाध्यायी सद्ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न स्थानों पर साधना हेतु पूर्वतैयारी, साधना की प्रारम्भिक अवस्थाओं एवं बाधाओं, प्रगति तथा अन्तत: परिपूर्णता की प्राप्ति आदि समस्त विषयों का वर्णन किया गया है।

भगवान् श्री कृष्ण साधकों से कहते हैं कि सर्वप्रथम आप समस्त भय एवं हृदय-दौर्बल्य का त्याग

१. 'द डिवाइन लाइफ' १९६८ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद
(इस वर्ष श्रीमद्भगवद्गीता जयन्ती २५ दिसम्बर को है)

करिए तथा शरीर, इन्द्रियों एवं मायावी मन के विरुद्ध इस विकट युद्ध में लड़ने का दृढ़ संकल्प करिए। इस संघर्ष में वैराग्य एवं अभ्यास आपके प्रमुख सहायक बनेंगे।

श्रीमद्भगवद्गीता उद्घोषित करती है, ''**उद्धरेदात्मनात्मानम्** — आप स्वयं अपना उद्धार करिए।'' मन की सहायता से ही मन को पवित्र किया जाना है। मन के एक भाग द्वारा मन के दूसरे भाग पर नियन्त्रण किया जाना है। उच्च दिव्य स्वरूप से सम्बद्ध मन की सहायता से इन्द्रियों एवं विषयों से जुड़े मन को नियन्त्रित एवं शुद्ध किया जाना चाहिए। यही संघर्ष है। यही योग-साधना का सार है। यहाँ अर्जुन एक अत्यन्त रोचक प्रश्न पूछते हैं, ''मन वायु के समान प्रबल एवं प्रचण्ड है, इस पर नियन्त्रण करना अत्यन्त कठिन है। मन पर नियन्त्रण करने की अपेक्षा वायु पर नियन्त्रण करना सरल एवं सुगम है। अत: मन पर नियन्त्रण कैसे करें?'' इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् प्रकट करते हैं कि वे एक यथार्थवादी हैं। वे इसके विषय में दार्शनिक बातें करते हुए ऐसा नहीं कहते हैं कि यह मूर्खतापूर्ण प्रश्न है जिसे अर्जुन द्वारा नहीं पूछा जाना चाहिए था; अपितु भगवान् अर्जुन की बात से सहमत होते हुए कहते हैं कि मन पर नियन्त्रण करना अत्यधिक कठिन है। यह कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं है। 'अभ्यास' एवं 'वैराग्य' द्वारा मन पर नियन्त्रण करना सम्भव है। प्रत्येक साधक को इन दो शब्दों को सदैव याद रखना चाहिए।

अभ्यास एवं वैराग्य दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं, ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये दोनों एक-दूसरे को पूर्ण तथा सशक्त बनाते हैं। सतत अभ्यास अर्थात् साधना के बिना वैराग्य क्षीण हो जायेगा। वैराग्य के बिना साधना सम्भव नहीं होगी। साधक द्वारा आत्म-साक्षात्कार हेतु की जाने वाली सतत साधना में क्या बाधा है? यह बाधा वैराग्य का अभाव है।

सन्त-महापुरुषों ने सदैव इस बात पर बल दिया है कि सत्संग, सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय एवं इन सद्ग्रन्थों में प्रतिपादित सत्यों पर मनन द्वारा वैराग्य का विकास किया जा सकता है तथा इसे स्थायी रखा जा सकता है। सन्तजनों द्वारा ही हमारे हृदयों में वैराग्य के बीज का वपन किया जाता है; इसके पश्चात् हमें श्रीमद्भगवद्गीता, वैराग्यशतक, धम्मपद, इमीटेशन ऑफ क्राइस्ट आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय तथा इनमें वर्णित आध्यात्मिक सत्यों पर सतत चिन्तन-मनन द्वारा इस वैराग्य रूपी बीज का पोषण-संवर्द्धन करना चाहिए।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने हमारे हृदयों में वैराग्य की ज्वाला को सदैव प्रदीप्त रखने के लिए एक सुन्दर उपाय बताया है—मृत्यु को याद रखें; संसार के दु:खों-कष्टों को याद रखें; भगवान् को याद रखें; सन्तों को याद रखें। यह एक अद्भुत सूत्र है। हमें इन चार वाक्यों को प्रत्येक दिन, प्रत्येक घण्टे तथा प्रत्येक अवसर पर स्मरण रखना चाहिए। इससे हम निश्चयमेव वैराग्य का विकास कर पायेंगे।

मृत्यु को याद रखिए। मृत्यु आपको यह स्मरण दिलाती है कि आपका यह शरीर एवं इससे जुड़ा सांसारिक जीवन शीघ्र ही नष्ट होने वाला है। मृत्यु का स्मरण देहाध्यास एवं देहात्मबुद्धि का समूल नाश करता है। यह आपको शरीर के प्रति उदासीनता का विकास करने में समर्थ बनाता है। जो व्यक्ति मृत्यु को सदैव याद रखता है, वह कभी अपने शरीर को सजाने में समय व्यर्थ नहीं गँवायेगा तथा न ही दिन-रात इसके विषय में चिन्ता करेगा। परन्तु मृत्यु का विचार अमूर्त एवं अस्पष्ट हो सकता है अत:—

संसार के दु:खों को याद रखिए। इससे वैराग्य उत्पन्न करने वाले तथ्य स्पष्ट रूप से आपके समक्ष आयेंगे। ये आपको संसार के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराते हैं। युवावस्था सायंकालीन पुष्प के समान मुरझा जाती है। गोल-सुन्दर कपोलों पर झुर्रिया आ जाती हैं। शरीर को विभिन्न रोग घेर लेते हैं। शीघ्र ही वृद्धावस्था आ जाती है। आपका आपके प्रियजनों से वियोग होने लगता है। धन-सम्पत्ति की हानि, पद एवं प्रतिष्ठा का खोना, भूकम्प, युद्ध आदि आपके सामने संसार का वास्तविक स्वरूप लाते हैं। **सर्वंदु:खं विवेकिन:**—एक विवेकी मनुष्य के लिए यह जगत् दु:खमय ही है।

भगवान् को याद रखिए। अब गुरुदेव आपको सकारात्मक पक्ष के विषय में बताते हुए कहते हैं कि भगवान् को याद रखिए। संसार दु:खों-कष्टों से भरा है परन्तु इनसे परे है—सच्चिदानन्द आत्मा, शाश्वत, पूर्ण, पवित्र तथा ज्ञान, शान्ति एवं आनन्द से परिपूर्ण आत्मा। आत्मा रूप में विराजमान आपके अन्तर्वासी भगवान् का स्मरण जीवन में आशा का संचार करता है तथा उनकी प्राप्ति हेतु आपको प्रेरित करता है।

सन्तों को याद रखिए। सन्त-महापुरुष आपको यह स्मरण कराते हैं कि भगवान् ध्यान करने के लिए एक आदर्श लक्ष्य मात्र नहीं हैं, अपितु उनका अभी एवं यहीं अनुभव किया जा सकता है। सन्तजन भगवान् को आपके समीप ले आते हैं। वे आत्म-साक्षात्कार के जीवन्त उदाहरण हैं। उनके विषय में चिन्तन, उनका स्मरण आपको यह आश्वासन देता है कि आप भी उनके समान बन सकते हैं तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करके शान्ति एवं आनन्द में सदैव निमग्न रह सकते हैं।

इन चार वाक्यों का सतत चिन्तन आपके वैराग्य का पोषण करेगा तथा वैराग्य भगवद्-साक्षात्कार हेतु आपके प्रयास को पोषित एवं वर्द्धित करेगा; यह प्रयास ही अभ्यास कहलाता है।

एक योगशास्त्र के रूप में श्रीमद्भगवद्गीता का उद्देश्य हमें भगवान् से योग अर्थात् एकत्व प्राप्ति का रहस्य बताना है। जब हम इसके समस्त अठारह अध्यायों का अध्ययन कर भगवान् से एकत्व प्राप्ति की मूलभूत विधि को जानने का प्रयास करते हैं, तो हमें ज्ञात होता है कि भगवान् कृष्ण चाहते हैं कि हम अपने मानवीय स्वभाव की सभी मलिनताओं एवं अशुद्धियों का त्याग करके दिव्य बनें। यह इस कथन के समान ही है—**देवो भूत्वा देवं आराधयेत्** अर्थात् आपको दिव्य बन कर भगवान् की आराधना करनी चाहिए। अभी हम दिव्य चेतना की भूमिका पर नहीं अपितु मानवीय चेतना की भूमिका पर रह रहे हैं। अत: हममें इस भूमिका की अशुद्धियों, दोषों, दुर्बलताओं, सीमाओं एवं अपूर्णताओं का होना स्वाभाविक है। मानवीय चेतना की भूमिका में रह रहे हम स्वयं को दिव्य किस प्रकार बना सकते हैं? इसका समाधान हमें इस महान् शास्त्र के चौदहवें अध्याय में प्राप्त होता है। मनुष्य के अपने जीवन को दिव्य बनाने के पथ में आने वाली कठिनाई से भगवान् अनभिज्ञ नहीं हैं। वे कहते हैं कि आप इस मानव लोक में हैं, मैंने इस लोक में भी अपने दिव्य तत्त्व को रखा है। मेरे इस अंश से अपने सम्पूर्ण जीवन को पूरित करने का प्रयास करिए। भगवान् इस मानव लोक में सत्त्वगुण के रूप में विराजमान हैं। इस धरा पर जो भी सत्त्वगुण से युक्त है, उसमें हमारे मानवीय व्यक्तित्व को दिव्यत्व में रूपान्तरित करने की शक्ति है। यही भगवद्-प्राप्ति का मार्ग है।

हम सब जानते हैं कि हमारे व्यक्तित्व के प्रत्येक भाग में तीन गुण होते हैं—चाहे वह हमारे विचार हो,

भावनाएँ हों, वाणी हो अथवा हमारी वासनाएँ हों। हमारे जीवन का कोई भाग ऐसा नहीं है जो इन तीन गुणों (सत्त्व, रज एवं तम) से मुक्त हो। प्रकृति स्वयं त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से युक्त है। कभी सत्त्वगुण रजोगुण एवं तमोगुण द्वारा पराभूत होता है, कभी रजोगुण एवं तमोगुण को पराभूत कर सत्त्वगुण प्रधान होता है; इसी प्रकार कभी सत्त्वगुण एवं तमोगुण को अभिभूत कर रजोगुण प्रधान तथा कभी सत्त्वगुण एवं रजोगुण को अधीन कर तमोगुण प्रधान हो जाता है। हमारा प्रयास स्वयं को सत्त्वगुण से अधिकाधिक पूरित करने का होना चाहिए।

यही सदाचार के अभ्यास की विधि है। तमोगुण के नाश तथा रजोगुण का सत्त्वगुण में ऊर्ध्वीकरण करने का यथासम्भव प्रयास करिए। रजोगुण जीवन का प्रतीक है। रजोगुण का नाश नहीं किया जा सकता है; यह एक आवश्यक बुराई है जिसके साथ हमें सतत रहना है। तमोगुण के जिस एक भाग अर्थात् 'निद्रा' को आप समाप्त नहीं कर सकते हैं, उस पर नियन्त्रण रखिए। रजोगुण का उच्चतर सात्त्विक उद्देश्यों हेतु उपयोग करिए। सत्त्वगुण में वृद्धि करिए।

हमारे जीवन का प्रत्येक भाग, हमारे विचार, वाणी, कर्म, उद्देश्य, भोजन, संगति, वातावरण तथा हमारा तप, दान, साधना एवं सेवा सभी सत्त्वगुण से ओत-प्रोत हो जाने चाहिए। तब हमारा उत्तरदायित्व, हमारा कार्य पूर्ण हो जाता है। उसके पश्चात् भगवान् देखते हैं कि अब हम उनके द्वारा अपने उद्धार हेतु तैयार हो गये हैं। तब वे स्वयं कृपापूर्वक हमारा हाथ पकड़ कर हमें दिव्यत्व के शिखर पर आरूढ़ करते हैं। यह श्रीमद्भगवद्गीता का विशिष्ट योग है। अन्य समस्त साधन एवं विधियाँ व्यक्तियों के विभिन्न स्वभावों के अनुसार इसी मूलभूत प्रक्रिया को सम्पन्न करती हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान् द्वारा कुछ साधनाएँ बतायी गयी हैं जो तमोगुण के नाश एवं रजोगुण के ऊर्ध्वीकरण का कार्य करती हैं। इनमें से सर्वाधिक प्रमुख है— भगवान् का स्मरण। भगवान् कहते हैं, "सतत मेरा चिन्तन-स्मरण करो।" जब मन निरन्तर भगवद्-चिन्तन में लगा है अर्थात् सात्त्विकता से पूर्ण है, तब उसमें तमोगुण का प्रवेश कैसे हो सकता है? भगवान् हमें आश्वस्त करते हुए कहते हैं, "यदि तुम अपने हृदय में सदैव मेरा चिन्तन-स्मरण करोगे, तो तुम सदैव मुझमें ही वास करोगे।" दूसरी साधना है—भगवद्-अर्पण की साधना। भगवान् कहते हैं, "सब कुछ मुझे अर्पित कर दो।" यदि आप कोई कार्य करके उसे भगवान् को अर्पित करते हैं तो यह उनकी आराधना बन जाता है, यह दिव्य बन जाता है। कुछ भी ग्रहण करने से पूर्व यदि आप उसे भगवान् को अर्पित करते हैं तो वह उनका प्रसाद बन जाता है। एक अन्य साधना बताते हुए भगवान् कहते हैं, "सर्वत्र मेरा ही दर्शन करो।" सबमें भगवान् का दर्शन करते हुए सतत नमस्कार-साधना करिए। एक साधक को यह अनुभव करना चाहिए कि मैं सर्वत्र दायें-बायें, ऊपर-नीचे भगवान् को ही प्रणाम करता हूँ। यह साधना भी समस्त दुर्गुणों का नाश करने वाली महान् परिवर्तनकारी साधना है जो हमारे जीवन को पूर्णत: दिव्य बना देती है। हम सब आध्यात्मिक साधक जो इस दुःखमय सांसारिक जीवन से मुक्ति तथा वास्तविक शान्ति एवं आनन्द की आकांक्षा करते हैं, हमारे लिए श्रीमद्भगवद्गीता अद्भुत साधना, अद्भुत निधि, जीवन के प्रति एक अद्भुत भाव एवं दृष्टिकोण प्रदान करती है।

श्रीमद्भगवद्गीता आपकी पथप्रदर्शिका बने। भगवान् श्री कृष्ण आपके जीवन के लक्ष्य बनें।

हरि ॐ तत् सत्।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

तिरेसठ नयनार सन्त :

कण्णप्प नयनार

(परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

पोट्टपि नाडु के उडुप्पर नामक किसी वन-प्रदेश में एक व्याध जाति रहती थी जिसके सरदार का नाम नागन था। तत्तयै उसकी पत्नी थी। वे दोनों भगवान् सुब्रह्मण्य के एकनिष्ठ भक्त थे। उन्हीं की कृपा से दीर्घ समय के बाद पति-पत्नी को सन्तान प्राप्त हुई। यह बालक बहुत ही अधिक भारी था, इसलिए इन्होंने बालक का नाम तिण्णनर रख दिया।

तिरु कालाहस्ति पुराणम् के अनुसार तिण्णनर पिछले जन्म में अर्जुन था। जब वह पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के लिए भगवान् शिव की पूजा करने गया, और जब भगवान् ने उसे एक आखेटक के वेश में दर्शन दिये, तो अर्जुन उन्हें पहचान न सका। इसीलिए अब उसे मोक्ष प्राप्त करने से पूर्व एक आखेटक बन कर भगवान् की उपासना करने के लिए पुनः जन्म लेना पड़ा था।

तिण्णनर को आखेटकों की परम्परा के अनुसार शिक्षा दी गयी। शीघ्र ही वह आखेट करने में कुशल हो गया। जब वह अभी किशोरावस्था में ही था तभी उसके पिता ने कार्यभार त्याग दिया और तिण्णनर को अपनी जाति का राजा बना दिया। यद्यपि वह आखेटक था और अपने कार्य को धर्म मानते हुए आखेट भी करता था तथापि तिण्णनर का हृदय प्रेम-भाव से पूर्ण था और वह कभी भी शिशु, मादा और रोगी पशु-पक्षियों की हत्या नहीं करता था। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से वस्तुतः वह अपने भीतर के काम, क्रोध, लोभ और अहंकार रूपी पशुओं का वध कर चुका था।

एक दिन तिण्णनर आखेट के लिए गया। उसके जाल से एक सुअर बच कर निकल गया। तिण्णनर ने अपने दो साथियों, नानन और कादन सहित उसका पीछा किया। बहुत देर तक भागने के बाद अन्ततः सुअर थक कर एक वृक्ष के समीप जा खड़ा हुआ और शीघ्र ही तिण्णनर ने उसे मार गिराया। किन्तु अब तक वे तीनों भी थक चुके थे और उन्हें प्यास भी लगी हुई थी। वे पोन्मूकाली की ओर बढ़े। तिण्णनर की निकटवर्ती पर्वत पर चढ़ने की इच्छा हुई। नानन भी यह कहते हुए साथ जाने को तैयार हो गया कि उस कालाहस्ति पर्वत पर भगवान् कुडुमित्तेवर (गुच्छाधारी भगवान्) हैं। कादन आखेट को पकाने में व्यस्त रहा।

जैसे-जैसे वे पर्वत पर ऊपर की ओर बढ़ रहे थे, तिण्णनर में गत जीवन के संस्कारवश निश्चित रूप से कुछ परिवर्तन आता जा रहा था। उन्होंने अनुभव किया कि उनके कन्धों से कोई भारी बोझ उतर रहा है। उनका देह-बोध लुप्त होता जा रहा था। जैसे ही उन्होंने भगवान् को वहाँ देखा, वे दिव्य प्रेम और हर्षातिरेक के गहन एवं प्रचण्ड वेग के भाव हृदय में उमड़ते हुए अनुभव करने लगे। वे शिवलिंग को आलिंगित करके चूमने लगे। आनन्दोल्लास से उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उन्हें लगा कि भगवान् यहाँ नितान्त एकाकी हैं, अतः उन्हें यहाँ उनके पास ही रहना चाहिए। फिर उन्होंने सोचा कि भगवान् को तो भूख भी लगी होगी। यद्यपि वे भगवान् को अकेला छोड़ कर जाना नहीं चाहते थे,

तो भी अत्यन्त शीघ्रता से वे उनके लिए भोजन लाने पर्वत के नीचे उतर गये। उन्होंने सुअर के मांस के सबसे बढ़िया-बढ़िया टुकड़े चुने और फिर उनको खा-खा कर देखा। जो सर्वोत्तम भाग था, वह चुन लिया। इसी बीच उन्हें नानन से ज्ञात हुआ कि भगवान् को भोजन देने से पहले उनकी नित्य जल और फूलों से पूजा भी की जाती है। अतः उन्होंने पूजा की शेष सामग्री एकत्रित करनी आरम्भ कर दी। निकट की नदी से उन्होंने अपने मुख में जल भर लिया और आस-पास से फूल एकत्रित करके अपने केशों में खोंस लिये! सुअर का भूना हुआ मांस एवं धनुष-बाण उठा कर पुनः इस बार अकेले ही पर्वत पर ऊपर की ओर चल दिये।

मन्दिर में पहुँच कर तिण्णनर पूजा के लिए जो जल मुख में भर कर लाये थे, उन्होंने वह सीधा भगवान् के ऊपर डाल दिया। यह उनका अभिषेक था। फिर अपने केशों से पुष्प निकाल-निकाल कर शिवलिंगम् का शृंगार किया। यह उनकी अर्चना थी। फिर भगवान् के सम्मुख सुअर का मांस रखा और वन-पशुओं से भगवान् की रक्षा करने के लिए बाहर द्वार के आगे जा कर खड़े हो गये। प्रातः भगवान् के भोजन के लिए ताज़ा भोजन लाने के लिए वे आखेट करने चले गये।

इधर नानन और कादन को तिण्णनर में आये हुए परिवर्तन को देख कर चिन्ता हो गयी (क्योंकि वे दोनों इसे पागलपन समझ रहे थे)। उन दोनों ने जा कर सारी बात तिण्णनर के माता-पिता को बतायी। माता-पिता उनके साथ आये और तिण्णनर को वापस ले जाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु सब व्यर्थ रहा। वे भी निराश हो कर लौट गये।

जब तिण्णनर प्रातः का भोजन लाने के लिए मन्दिर से चले गये तो पीछे से मन्दिर का पुजारी शिवगोचर सदा की भाँति विधिवत् पारम्परिक पूजा करने मन्दिर पहुँचा। मन्दिर को किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा इस प्रकार अपवित्र किया गया देख कर वह भय से काँप उठा। उसे आगमों (शिवोपासना-विधियों) का भली-भाँति ज्ञान था। उसने पवित्रीकरण सम्बन्धी आवश्यक कार्य सम्पन्न किया, पुनः स्नान किया और पूजा आरम्भ कर दी। पवित्र पात्र में जल ले कर आया, अपने मुख पर पट्टी बाँध ली जिससे कि मुख के श्वास से जल अपवित्र न हो। एक शुद्ध टोकरी में वह नव-विकसित पुष्प ले कर आया। वह फल और उसी समय बनायी गयी मिठाई भी लाया। भगवान् को अर्पित करने से पहले उसने फल-फूलों का भली-भाँति निरीक्षण भी किया कि वह किसी जीव-जन्तु द्वारा दूषित किये गये न हों। पूजा करके वह अपने घर लौट गया।

तिण्णनर ताज़ा मांस ले कर वापस लौटे। उन्होंने पुजारी द्वारा किये गये साज-शृंगार को एक ओर हटा दिया, अपने ढंग से पूजा की और फिर पहले की तरह रक्षा करने के लिए प्रवेश-द्वार पर खड़े हो गये।

पाँच दिन यही कार्यक्रम चलता रहा। इस पावन स्थल को प्रतिदिन इस प्रकार अपवित्र किये जाने को देख कर पुजारी अत्यधिक व्याकुल एवं चिन्तातुर था। उसने भगवान् से यह सब रोकने के लिए प्रार्थना की। भगवान् ने तिण्णनर की भक्ति की पराकाष्ठा से शिवगोचर को परिचित कराना चाहा। उन्होंने स्वप्न में पुजारी शिवगोचर को प्रातः मन्दिर में जा कर छुप कर देखने का आदेश दिया।

छठे दिन, तिण्णनर प्रातः प्रतिदिन की तरह भगवान् के लिए भोजन लेने निकले। लौटते समय मार्ग में उन्हें बहुत से अपशकुनों का सामना हुआ जिससे उन्हें ऐसा लगने लगा कि भगवान् के साथ अवश्य ही कुछ

अनहोनी घटना घटी है। अपने सम्बन्ध में तो वे इतने बेसुध थे कि वह सोच ही नहीं सकते थे कि उनके साथ कोई दुर्घटना हो सकती है। वह तीव्र वेग से भगवान् की ओर दौड़ने लगे। और वहाँ पहुँचने पर जब देखा कि भगवान् के दायें नेत्र से रक्त की धारा बह रही है तो उनके शोक का पारावार न रहा। पूजा के लिए जो सामग्री ले कर आये थे, वह हाथ से छूट कर नीचे गिर गयी और वे फूट-फूट कर रोने लगे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि भगवान् के साथ ऐसा किसने किया, क्योंकि कहीं कोई दिखायी भी नहीं दे रहा था। जिन जड़ी-बूटियों का उन्हें ज्ञान था उनसे चिकित्सा करने का प्रयास किया; किन्तु फिर भी रक्त बहना बन्द नहीं हुआ। उनके मन में एक सीधा-साधा विचार आया, 'मांस के बदले मांस' अर्थात् अंग के स्थान पर अंग। और उन्होंने तत्काल अपने बाण की नोक से अपनी दाहिनी आँख निकाली तथा भगवान् की दाहिनी आँख के ऊपर रख कर उसे धीरे से दबाया। रक्त बहना बन्द हो गया। उनका हृदय प्रसन्नता से खिल गया। जब वे हर्षातिरेक से नृत्य कर रहे थे तो अचानक उन्होंने देखा कि भगवान् के बायें नेत्र से रक्त प्रवाहित होने लगा है। किन्तु अब तो उन्हें उपाय सूझ चुका था। बस केवल एक समस्या थी, अपना बायाँ नेत्र निकाल लेने के बाद भगवान् के नेत्र का सही स्थान कैसे ज्ञात होगा। अतः शिवलिंग पर जहाँ भगवान् का बायाँ नेत्र था, वहाँ तिण्णनर ने अपना पाँव रख दिया और बाण से अपना बायाँ नेत्र निकालने लगे।

तुरन्त भगवान् शिव ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा, ''मेरे प्यारे बच्चे, कण्णप्प! अपने नेत्र को निकालना बन्द करो।'' भगवान् ने कण्णप्प शब्द तीन बार कहा। कण्णप्पर त्रिवार आशीर्वादित हुए। तिण्णनर अब कण्णप्पर हो गये थे, क्योंकि उन्होंने अपना नेत्र भगवान् को दे दिया था। भगवान् ने अपने दोनों हाथों से उन्हें पकड़ लिया और अपनी दायीं ओर बैठा लिया। कण्णप्पर को पुनः नेत्र प्राप्त हो गया और वह स्वयं भगवान् के समान हो गये। शिवगोचर पुजारी को सच्ची भक्ति का बोध हो गया।

इस कथा का प्रतीतात्मक अर्थ भी है। नयनार ने अन्य सभी दोषों को जीत लिया था, किन्तु अनव मल अर्थात् अहंकार को नष्ट करना अभी शेष था। जंगली सुअर इसी का प्रतीक है। जैसे ही वह मृत्यु को प्राप्त हुआ, उसी क्षण पराभक्ति उदित हो गयी। सुअर के आखेट हेतु पीछे भागते हुए साधक के साथ गुण और दोष दोनों रहते हैं (कादन और नानन दोनों सहयोगी आखेटक)। नानन (सद्गुण) उसे भगवान् की महिमा का वर्णन करता है। साधक कादन (दुर्गुण) को पीछे छोड़ देना पड़ा। शुभ संस्कारों से युक्त साधक भगवान् के सान्निध्य में पहुँच जाता है। किन्तु जब उसने साक्षात्कार प्राप्त करना होता है तब उसे सद्गुणों का भी त्याग करना पड़ता है। इसीलिए जब नयनार भगवान् की पूजा करने के लिए गया, तब वह एकाकी ही गया था। नयनार के माता-पिता (अन्तर्निहित सांसारिक शुभ एवं अशुभ प्रवृत्तियाँ) उसे भगवान् के सान्निध्य से दूर लौटा कर ले जाने का प्रयास करते हैं, किन्तु असफल रहते हैं। जब तिण्णनर सामने थे तब भगवान् ने पुजारी को अपने पीछे छुप जाने के लिए कहा था, इसका अर्थ यह है कि सच्ची भक्ति मात्र कर्मकाण्ड से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। तिण्णनर का भगवान् के लिए स्वयं अपने नेत्र निकालने को तत्पर होना, परिपूर्ण आत्म-समर्पण अथवा आत्म-निवेदन का द्योतक है, जो कि भक्ति की पराकाष्ठा है तथा जिसके द्वारा भगवान् तत्क्षण अपनी परिपूर्ण महिमा सहित प्रकट हो जाते हैं।

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आपका शान्ति-दूत :

हमारी आध्यात्मिक धरोहर, एक अविश्वसनीय उपहार!

(परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज)

मानव-जाति के इतिहास के विषय में जहाँ तक हमें ज्ञात है, प्राचीन काल से ही मानव-समाज में विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रही है। प्रारम्भ में मनुष्य यह जानना चाहता था कि वह भोजन, आवास और पानी की खोज कहाँ और कैसे करे, फिर एक समय आया जब वह केवल शरीर सम्बन्धी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सन्तुष्ट नहीं था और अब उसके भीतर और गहरे प्रश्न सुलझाने की इच्छा जागने लगी थी। गत अनुभवों से उसने जाना कि प्रत्येक जीवन के आरम्भ के साथ अन्त भी है। वह सोचने लगा, 'मैं यहाँ क्यों आया हूँ? कहाँ से आया हूँ? फिर मैं कहाँ चला जाऊँगा?'

ये प्रश्न पूछे जाते थे, परन्तु कोई उत्तर निकल कर नहीं आता था। कुछेक अन्वेषक प्रकृति के अग्रणी व्यक्तियों ने इसके गुप्त द्वार खोल कर इसके पीछे छिपे रहस्य को जानने की इच्छा की। यह एक पूर्णतया नवीन और अनन्वेषित आयाम था। लोगों ने आत्मा के क्षेत्र में इस साहसपूर्ण खोज को प्रारम्भ किया और उन्होंने मनुष्य के केवल बाह्य स्वरूप की ही खोज नहीं की, अपितु अपने व्यक्तित्व के भीतर तक के क्षेत्र में गये। उन्हें वहाँ तक अवश्य ही पहुँच कर वह उपलब्धि हुई होगी जो तबसे पहले तक अज्ञात एवं रहस्य रही थी। यही आन्तरिक उपलब्धियाँ मानव-जीवन का तात्त्विक, दार्शनिक और धार्मिक साम्राज्य हैं। हम आज इसीलिए अधिक समृद्ध हैं, क्योंकि हमारे इन पूर्वजों ने इस अन्वेषण को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया।

आज भ्रमित और विक्षुब्ध मानव-जाति अपनी पहचान को भूल चुकी है और जीवन का सही एवं सन्तोषजनक अर्थ समझती प्रतीत नहीं होती। यदि मनुष्य यह जान ले कि इन प्राचीन काल के ऋषियों की खोज आज के मानव के लिए हैं, तो उसे एक बार फिर से जीवन से सही अर्थों के सम्बन्ध में दिशा-बोध हो जाये। तब फिर उसे इस प्रकार भ्रमित होने और निराशा में भटकने के कारण उत्पन्न हो जाने वाली समस्याओं का समाधान भी मिल जायेगा। यदि वह केवल इतना-भर समझ जाये कि ये प्राचीन शिक्षाएँ आधुनिक मानव के लिए भी हैं तो यह लड़खड़ाना निरर्थक हो सकता है और इस तनाव से बचा जा सकता है। ये आज हमारे लिए हैं, क्योंकि ये अन्तर्बोध समस्त मानवता के लिए धरोहर हैं और ये सबके उपयोग किये जाने के लिए उपकरण हैं। ये सब हमारे जीवन जीने के लिए और महान् लक्ष्य प्राप्ति की ओर बढ़ने के उद्देश्य को लिये हुए असंख्य प्रकाश के रूप में उपलब्ध निर्देशन हैं। मानवता के लिए अतीत से प्राप्त ऐसी समृद्ध बहुमूल्य धरोहर हर शताब्दी में उपलब्ध रही है।

किन्तु यह शोकपूर्ण यथार्थ है कि जीवन में इन महान् शिक्षाओं के वास्तविक स्थान को जाना ही नहीं गया, और इसके परिणामस्वरूप हम आज अकिंचन हैं। यदि हमने इन शिक्षाओं की जीवन में सही भूमिका को समझ लिया होता तो उन सब कष्टों से बचा जा सकता था जो आज मानव को झेलने पड़ रहे हैं। ये शिक्षाएँ मानव-समाज की वास्तविक सम्पदा का निर्माण करती हैं। अन्ततः जब तक जीवन के सम्बन्ध में 'क्यों और कैसे' को भली-भाँति समझ नहीं लिया जाता, तब तक मनुष्य का जीवन भ्रमित, निरर्थक भटकाव से पूर्ण तथा अत्यधिक अवसाद, दुःख एवं निराशा से भरा हुआ रहेगा ही। किन्तु यदि हम इस धरोहर पर अपना अधिकार स्वीकार करते हुए इसे जीवन में अपना लेते हैं, और हमारे प्राचीन मनीषियों द्वारा हमारे लिए छोड़े गये इन महान् उद्‌बोधनों के प्रकाश में जीवन जीते हैं, तब हमारा पथ हमारे समक्ष पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगा।

यदि कोई व्यक्ति किसी भारी भीड़ में एकत्रित लोगों से पूछे, ''आपका अपने निजी मन से व्यवहार करने का क्या ढंग है?'' तब वह देखेगा कि उनमें से अधिकांश ने कभी पहले स्वयं यह प्रश्न पूछा ही नहीं होगा। और बहुत तो यह भी जानते नहीं होंगे कि अपने अन्तर्मन के साथ व्यवहार करने के लिए किसी सिद्धान्त की भी आवश्यकता है। उनके पास मन-प्रबन्धन के सम्बन्ध में कोई सुनिश्चित सूत्र अथवा ढंग नहीं है। सम्भवतया स्थिति यह है कि वे स्वयं ही मन के द्वारा प्रबन्धित हैं। मन उन्हें जिस ओर खींचता है, बस वे उसी दिशा में खिंचे चले जाते हैं। यह स्थिति आधुनिक मानव-समाज के अधिकांश लोगों में व्याप्त है। यह बिलकुल ऐसे है जैसे गाड़ी में बैठे हों और चालन-चक्का अपने नियन्त्रण में न हो। यह तो फिर महा विपदा की ओर ही ले जाने वाला होगा।

प्रत्येक विचार के पीछे कोई एक उद्देश्य होना चाहिए, मानव को अनेकों प्रकार के अनियन्त्रित विचारों एवं भावनाओं का आखेट बनने से बचने का केवल एक यही उपाय है। उद्देश्यहीनता एक बहुत बड़ा अवगुण तो है ही, भयप्रद एवं हानिकारक भी है। जितनी हानि अवगुण से हो सकती उतनी ही निरुद्देश्यता से भी हो सकती है। जिस प्रकार हमें ऐसा सुव्यवस्थित कक्ष अच्छा लगता है जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने-अपने उचित स्थान पर रखी हुई हो, बिलकुल वैसे ही हमें अपने मन में प्रत्येक विचार को यथास्थान एवं यथासमय सुव्यवस्थित रखना आवश्यक है। हम इस विषय में तो अत्यन्त सावधान रहते हैं कि हम बाहर से किस प्रकार अच्छे दिखायी दे सकते हैं, किन्तु वैसा ही ध्यान हम इस ओर नहीं देते कि हमारा अन्तर्मन किस प्रकार सुव्यवस्थित हो। हर एक व्यक्ति के लिए उद्देश्यपूर्ण विचार करने की आवश्यकता को जानना चाहिए और जितनी अधिक छोटी आयु से ज्ञात हो जाये, उतना ही अच्छा है।

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आध्यात्मिकता का सत्य-स्वरूप :

योग-शक्ति हममें निहित है

(परम पावन श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज)
(पूर्व-अंक से आगे)

योगी का गुण समझना है, प्रतिकार करना अथवा क्रोधवश प्रतिशोध लेना नहीं। वह बाह्य संसार के उकसाने से विचलित नहीं होता। वह दास नहीं है; वह अधिपति है। एक विशेष प्रकार का स्वभाव शक्ति की कठोरता के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है। '**वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि** (उत्तररामचरित ३.२३): योगी हीरे से भी अधिक कठोर तथा कमल की पत्ती से भी अधिक कोमल होते हैं। हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते, वे इतने शक्तिशाली होते हैं, परन्तु उनके समान कोमल भी कोई नहीं हो सकता। यह 'लावण्य' तथा 'बल' का सामंजस्य है। 'रूप लावण्य बल : सुन्दरता, वैभव, चुम्बकीय व्यक्तित्व, शक्ति—ये समस्त क्रमश: हमारे व्यक्तित्व की शक्तियों, जो ऐन्द्रिक क्रियाशीलता, अहंवादी पुष्टीकरण तथा विभिन्न प्रकार की इच्छाओं द्वारा दूर हो गयी हैं, को एक-साथ लाने के हमारे निरन्तर प्रयास का अवश्यम्भावी परिणाम है। हम इन्हीं को दबाने के लिए योग का अभ्यास करते हैं।

हम योग के उस चरण तक नहीं आये हैं जहाँ हमारी चेतना संसार की शक्तियों के साथ एकरूप हो जाती है। हम अभी भी एक आसन पर बैठने के प्रयास तथा निरन्तर एवं सामंजस्यपूर्ण श्वास लेने के निम्नतर चरण में हैं। परन्तु यदि इन साधारण अभ्यासों को दीर्घ काल के लिए सतत रखा जाये, तो ये अपना परिणाम दर्शायेंगी क्योंकि योग में प्रथम चरण ही स्वयं योग है। '**जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते**' (गीता ६.४४)।

भगवद्-जिज्ञासा स्वयं ही ऐसा गुण है, जो संसार में अन्य समस्त धर्मार्थ कार्यों से श्रेष्ठ है, क्योंकि भगवान् को जानने की इच्छा पूर्व जन्मों में अर्जित किये गये अपरिमित गुणों का ही फल है। भगवद्-इच्छा तब तक कोई नहीं कर सकता जब तक बहु पूर्व अनेक जन्मों में किये गये अनेक प्रयास फलीभूत न हुए हों।

अत:, हम अपने जीवन में उपशम प्रदान करने वाले योग नामक महान् घटक से सम्बन्धित हैं, जिसे अनेक शास्त्र माँ से भी अधिक दयालु तथा प्रिय बताते हैं। संसार में सर्वाधिक प्रिय व्यक्ति अपनी माँ होती है; तथा यह योग माँ से भी अधिक हमारा ध्यान रखेगा। हम जहाँ भी हों, तथा जब भी संकट में हों, हमारी माँ हमारा ध्यान रखती है। परन्तु योग हमारा अधिक ध्यान रखेगा, तथा यह निश्चय करेगा कि हमारे समक्ष कोई कठिनाई न आये। योग कोई व्यक्ति नहीं है जो बाह्य रूप में, माँ की भाँति हमारा ध्यान रख रहा है; यह ऐसा कुछ है जो हमारे अन्दर घटित हो रहा है। '**न देवा यष्टिं आदाय रक्षन्ति पशुपालवत्**' (महाभारत ५.३५.३३): जब उच्चतर शक्तियाँ हमारा ध्यान रखना सुनिश्चित कर लेती हैं, तब वे हमारी सुरक्षा गड़रिये की भाँति हाथ में छड़ी ले कर नहीं करतीं, जो अपनी भेड़ों के पीछे चलता है। ऐसा इसीलिए है क्योंकि ये दिव्य शक्तियाँ व्यक्ति नहीं हैं जो सैनिकों की भाँति बाहर घूम रही हों। वे हमारे भीतर निहित शक्तियाँ हैं, जो जागृत किये जाने पर हमारा ध्यान रखना आरम्भ कर देती हैं क्योंकि हमने उन पर ध्यान दिया है।

ये शक्तियाँ—तथा, वास्तव में, जो भी हम ढूँढ़ते हैं—हमारे अन्दर हैं। योग-दर्शन की महानतम चमत्कारिक खोज यह है कि जो हम खोजते हैं, वह हमारे अन्दर है। वह बाहर नहीं है, क्योंकि 'बाह्य' नामक कोई वस्तु नहीं है। बाह्य का तथ्य मानसिक क्रिया की एक विशेष परिकल्पना द्वारा उत्पन्न एक भ्रम है। जैसे स्वप्न में एक त्रुटिपूर्ण बाह्यता होती है, जबकि वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है, जाग्रत संसार में भी बाह्यता नामक कोई वस्तु नहीं है। क्या हम स्वप्न में एक विशाल बाह्य संसार नहीं देखते, जो हमसे विलग है? परन्तु क्या यह वास्तव में अलग है? हम भली-भाँति जानते हैं कि स्वप्न में दिखायी देने वाला विशाल संसार किस प्रकार हमसे सम्बद्ध है तथा संसार की

तथाकथित बाह्यरूपता मन की एक विशेष गतिशीलता द्वारा उत्पन्न एक मिथ्या रूप है। उसी प्रकार, यही बाह्यरूपता हमें प्रकृति के संसार से दूर रखती है।

संसार हमारे बाहर नहीं है, क्योंकि बाह्यता का विचार अथवा भाव मन के द्वारा उत्पन्न एक त्रुटिपूर्ण प्रभाव है; इसीलिए, योग बार-बार यह निर्दिष्ट करता है कि हमें केवल मन को ठीक करना है— **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'** (योग सूत्र १.२)। मन को ठीक करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना है। हम मन को ठीक करने का प्रयास कर रहे हैं, जैसे कि संसार में कोई त्रुटि हो। जो गलत है, वह हमारे सिर में, हमारे मन में, हमारी विचारधारा में, हमारे मनोवैज्ञानिक उपकरण की गति में है। जिसने हमें यह अनुभव कराया कि हम अन्तराल तथा समय के बाह्य-रूप संसार में हैं, उसे ठीक करना है। योग, इसीलिए, संसार को सही करने से, अथवा सम्पूर्ण धरती को सोने की चादरों से ढकने से प्रयोजन नहीं रखता, इत्यादि, क्योंकि ये सब वस्तुएँ आवश्यक नहीं हैं। जिसे हटाना आवश्यक है, वह है हमारे तथा संसार, अथवा ब्रह्माण्ड के मध्य असामंजस्य, जिसके कारण हम न केवल अपने आपमें तथा अपने निजी जीवन में दु:खी हैं, बल्कि हमारी दूसरे लोगों तथा संसार में अन्य वस्तुओं के प्रति भी त्रुटिपूर्ण धारणाएँ हैं।

यह मन, जो उपद्रवी है, शैतान है, ने ऐसा विध्वंस उत्पन्न किया है कि इसने हमारे अन्दर, हमारे अपने प्रति तथा अन्य समस्त पदार्थों के प्रति निरन्तर एक त्रुटिपूर्ण धारणा उत्पन्न कर दी है। हम यह सोचते हैं कि हममें कुछ गलत है तथा संसार में सबके साथ कुछ गड़बड़ है। यह सब मन का विविधता रूपी अवधारणा नामक एक विशेष तथ्य में समावेश के कारण है जिसे समझना दुष्कर है। यह समझना अत्यन्त कठिन है कि इसका तात्पर्य क्या है। मन इसी भ्रान्ति को उत्पन्न करके जीवित रहता है। यदि सब-कुछ स्पष्ट हो जाये, तो मन का अस्तित्व नहीं रह सकता। संसार में अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो येन केन प्रकारेण भ्रान्ति की स्थिति उत्पन्न करके ही जीवित रहते हैं। वे इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न करते हैं कि वह उनके लिए शक्ति के स्रोत का भ्रम बन जाता है। वे दूसरों को, या तो जोर से चिल्ला कर अथवा इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करके, कि लोगों के मन भटक जायें तथा वे अपने समक्ष प्रस्तुत वास्तविक समस्या के बारे में विचार न कर सकें, ठीक प्रकार से नहीं सोचने देते। अनेक राजनेता ऐसा करते हैं, तथा मन एक अधिपति-राजनेता है। इसने सब-कुछ भ्रम की स्थिति में डाल दिया है।

मन ने इतना ही नहीं किया, अपितु इसने सबके अन्दर यह भावना उत्पन्न कर दी है कि जो इसने किया है, वही सही है तथा यह, कि यही सही परिस्थितियाँ हैं। अत:, हमारे पास इस सम्भ्रान्त परिस्थिति से पीछे हटने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि हम यह पहले ही मान चुके हैं कि जो कदम हम उठा रहे हैं तथा जिस परिस्थिति में हम हैं, वे बिलकुल सही हैं। यदि सम्भ्रान्त परिस्थिति है तथा हम निश्चय कर चुके हैं कि यह सम्भ्रान्त परिस्थिति ही सही है, इसे इससे भी खराब सम्भ्रान्ति कहा जाता है, तथा, इसीलिए मन की इस रुग्णता का, विचारधारा के स्वरूप को अन्त में पुनर्व्यवस्थित करने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है। हमने यह सूत्र सुना है **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'** —योग मानसिक परिवर्तन को अवरुद्ध करने के लिए अंगीकार की गयी प्रक्रिया का नाम है। ये सब हमारे लिए एक प्रकार का नारा है। हम यह हजारों बार पढ़ते हैं, परन्तु इसका कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि न तो हम यह जान सकते हैं कि मन क्या है, वृत्तियाँ क्या हैं, मानसिक परिवर्तनों का क्या तात्पर्य है, अथवा उन्हें नियमित कैसे किया जा सकता है। ये सब बातें साधारण लोगों की समझ से परे हैं, तथा जब हम वास्तव में इसका गम्भीर प्रयास करना आरम्भ करते हैं, तो यह हमारा प्रतिकार करेगा क्योंकि यह भयंकर दिखता है।

आरम्भ में योग भयंकर है। यह भयावह, अत्यन्त कष्टप्रद है। परन्तु वह कष्ट तथा भय हमारे उसके साथ सामंजस्य न स्थापित कर पाने के कारण है। **''यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।''** (गीता १८.३७): योग द्वारा प्रदत्त सुख अथवा आनन्द वह है जो तर्क तथा आत्मा को अन्तत: सन्तुष्टि प्रदान करता है, तथा जो आरम्भ में कड़वा प्रतीत होता है, परन्तु अन्त में अमृत-तुल्य होता है। यह वास्तविक, पवित्र तथा अमिश्रित सुख है। यह आरम्भ में

अत्यन्त अस्वादिष्ट होता है; अन्यथा, सभी इसका गम्भीर अभ्यास करते। यह अस्वादिष्ट अरुचिकर है, क्योंकि यह इन्द्रियों की इच्छाओं का प्रतिरोधक है, तथा हम इन्द्रियों के संसार में रहते हैं। हम इन्द्रियों के दास हैं। हमारे समक्ष ऐन्द्रिक संसार के अतिरिक्त कुछ नहीं है, अत: जो भी उससे भिन्न है, जिसे इन्द्रियाँ अनमोल अथवा सुखद मानती हैं, वह कटु, हानिकर तथा अनुपयुक्त है। इसी कारण बहुत कम लोग योगाभ्यास कर पाते हैं। '**मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये**' (गीता ७.३): हजारों मनुष्यों में, कोई एक इस पथ पर अग्रसर हो पाता है; तथा जो इसका अभ्यास करते हैं, उनमें से भी बहुत कम इसमें सफल होते हैं। मात्र इसीलिए कि हमने इसके चुनाव हेतु याचिका दायर की है, इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमारा चयन हो जायेगा। यह अत्यन्त कठिन है। इसके लिए कठोर परिश्रम की आवश्यकता है।

कठोर प्रयास वस्तुत: अभ्यास की निरन्तरता है। अभ्यास की समझ चाहे जितनी भी हो, वह निरन्तर होनी चाहिए। समस्त सफल कार्यों में निरन्तरता सबसे अधिक आवश्यक तथ्य है। यदि अन्य कुछ करना सम्भव न भी हो, तो कम से कम एक स्थिर आसन में अकेले बैठना सम्भव होना चाहिए। क्या इतना भी सम्भव नहीं हो पायेगा? मन तथा शरीर, दोनों इस अनुशासन से समायोजित हो जायेंगे जो हम उन पर अधिरोपित कर रहे हैं। एक आसन में कुछ समय के लिए बैठना एक महान् अनुशासन है क्योंकि मन हर प्रकार के अनुशासन के लिए है। किसी भी प्रकार की प्रणाली मन द्वारा नापसन्द की जाती है। मन को सदैव सम्भ्रान्ति प्रिय है, तथा किंचित् मात्र अनुशासन भी, जिसका हम इसमें परिचय देते हैं, अप्रसन्नता तथा प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। यह हमें एक आसन में दश मिनट भी नहीं बैठने देगा। हम अपना आसन बदल लेंगे, तथा इधर-उधर देखेंगे। हम सड़क पर भी हैं, तो भी सभी दुकानों को देखना चाहते हैं। हमें दुकानों से कुछ भी खरीदना नहीं होता, परन्तु हम उन्हें देखते हैं। यह मन का विकर्षण है।

पूर्व में ही इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि जिस सफल लक्ष्य की हम अपने अभ्यास द्वारा खोज कर रहे हैं, उसके लिए एक अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है। आश्रम इसी प्रकार का होता है क्योंकि यहाँ विनाशकारी शक्तियों का अभाव होता है तथा अभ्यास हेतु सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं; तथा यहाँ हम इसी प्रकार के वातावरण में हैं। अब दृढ़ संकल्प की, एक शक्तिशाली विचारधारा, तथा स्वयं लिये जाने वाले निर्णय की आवश्यकता है।

परन्तु, क्योंकि यह संकल्प ऐसे मन के लिए लेना आसान नहीं है जो सुख तथा आराम, विनोद तथा मनोरंजन आदि का अभ्यस्त है, अत: आरम्भ में कठोर विधियों के स्थान पर अभ्यास के अन्य आसान उपायों को अपनाना चाहिए। हमें यह देखने का प्रयास करना चाहिए कि किस प्रकार का अभ्यास अथवा योग का कौन-सा पक्ष शरीर तथा मन की वर्तमान स्थिति हेतु अनुकूल होगा, तथा कुछ समय तक उसमें दृढ़ रह पायेगा। तब हम यह पायेंगे कि जिस प्रकार फल धीरे-धीरे पकता है, भीतर से व्यक्तित्व शक्तिशाली हो जायेगा तथा अन्त में सम्पूर्ण व्यक्तित्व परिपक्व हो जायेगा, जो धीरे-धीरे अपने आपको व्यक्त करेगा तथा बाह्य रूप में परिलक्षित होगा। फल भीतर से पकना आरम्भ करता है तथा बाहर दिखायी देने में बहुत समय लेता है, अत:, अनेक साधक उदास अथवा दु:खी हो सकते हैं क्योंकि पकना बाहर दिखायी नहीं दे रहा है। वे कह सकते हैं, ''मैं अनेक मास तथा वर्षों से इतने प्रयास कर रहा हूँ, परन्तु कोई परिणाम नहीं है।'' हमें सदैव यह ज्ञात नहीं होता कि कोई परिणाम है भी, अथवा नहीं, क्योंकि सफलता परिलक्षित होने पर भी यह सदैव दृढ़तापूर्वक बाहर नहीं दिखेगा—जब तक निश्चित रूप से यह उच्चतम स्तर प्राप्त न कर ले।

अत:, धैर्य योग में एक सांकेतिक-शब्द है। हमारे अन्दर संकोच की भावना नहीं आनी चाहिए। हम भगवद्गीता की श्रेष्ठ सलाह स्मरण कर सकते हैं।

''**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**'' (गीता २.४७)। यह परीक्षण मत करते रहिए कि फल-प्राप्ति हो रही है अथवा नहीं। फल का स्वत: ही ध्यान रखा जायेगा। हम हृदय के धरातल से अभ्यास का अपने सर्वोच्च ज्ञान द्वारा, श्रेष्ठतम सम्भव अनुशासन द्वारा अपना कर्तव्य करें, तथा फल भविष्य में प्राप्त होगा।

(समाप्त)

(भाषान्तर : मेधा सचदेव)

आध्यात्मिक पथ के सहपथिको–मित्रो,

दिव्य आत्मन्,

ॐ नमो नारायणाय।

ॐ नमो भगवते शिवानन्दाय।

सस्नेह प्रणाम।

इससे पूर्व ऐसी स्थिति कभी नहीं हुई है कि आप सब इतने लम्बे समय से परम श्रद्धेय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के पावन आश्रम में नहीं आ सके हैं। कोविड–१९ महामारी के व्यापक संक्रमण के कारण आपका यहाँ आना तथा हम सबसे मिलना सम्भव नहीं हो पाया है। परन्तु हमें यह सत्य कभी विस्मृत नहीं करना चाहिए कि हमें श्री गुरुदेव के दिव्य सान्निध्य से कोई वंचित नहीं कर सकता है क्योंकि वे सदैव हम सबके हृदयों में वास करते हैं। यही सत्य हमारी सर्वोच्च निधि, महानतम आश्रय एवं परम सौभाग्य है।

हम प्रतिदिन भगवान् श्री विश्वनाथ एवं श्री गुरुदेव के चरणकमलों में आप सबके कल्याण, सुस्वास्थ्य, सुख एवं शान्ति तथा आध्यात्मिक उन्नति हेतु प्रार्थना करते हैं। कोविड–१९ महामारी के संक्रमण से स्वयं को मुक्त रखना अब सबका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व बन गया है। सरकार ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट दिशानिर्देश जारी किये हैं। इसलिए हम सबको अपने दिन–प्रतिदिन के जीवन में विवेक, धैर्य एवं जागरूकता का परिचय देते हुए अपने स्वास्थ्य की रक्षा स्वयं करनी चाहिए।

श्री गुरुदेव के आश्रम में अभी भी लॉकडाउन का पालन किया जा रहा है तथा यह इस वर्ष के अन्त तक बना रह सकता है। अगले वर्ष कैसी स्थिति होगी; इस विषय में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता है।

आप सबकी शारीरिक उपस्थिति के बिना, मुख्यालय आश्रम द्वारा कुछ महत्त्वपूर्ण उत्सव यथा १७ से २४ अक्तूबर तक नवरात्रि–पूजा, १४ नवम्बर को दीपावली तथा १५ से २० नवम्बर तक स्कन्द षष्ठी पर्व मनाये गये। आश्रम के अन्तेवासियों ने सरकारी निर्देशों का पालन करते हुए इन सब पवित्र उत्सवों में भावपूर्वक भाग लिया। इन कार्यक्रमों की वीडियो रिकार्डिंगस को आप सबके लिए 'डिवाइन लाइफ सोसायटी यू ट्यूब चैनल' पर अपलोड कर दिया गया है। इन सभी पावन अवसरों पर आप सबकी तरफ से प्रार्थनाएँ अर्पित की गयीं,

ये प्रार्थनाएँ आप सबकी यहाँ उपस्थिति एवं आपके द्वारा भगवद्-कृपा प्राप्ति की सूचक हैं।

ऐसे समस्त उत्सव अधर्म पर धर्म की विजय के उपलक्ष्य में मनाये जाते हैं। ये हमें सभी प्रकार की बुराई एवं नकारात्मकता का त्याग करके अपने जीवन को सुखमय बनाने की प्रेरणा देते हैं क्योंकि बुराई एवं नकारात्मकता से दु:ख ही प्राप्त होता है। एक आध्यात्मिक साधक के लिए अमर आनन्दमय आत्मतत्त्व की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

आश्रम द्वारा दिसम्बर माह में श्रीमद्भगवद्गीता जयन्ती, श्री दत्तात्रेय जयन्ती, अखण्ड महामन्त्र कीर्तन एवं श्री विश्वनाथ मन्दिर के प्रतिष्ठा महोत्सव की ७७ वीं वर्षगाँठ तथा क्रिसमस रिट्रीट एवं नववर्ष समारोह मनाये जायेंगे।

साधकवृन्द के लिए क्वेरेनटाइन एवं एकान्तवास का समय एक प्रच्छन्न आशीर्वाद के समान ही है क्योंकि वे इस समय का सदुपयोग अपनी साधना हेतु कर सकते हैं। आप सबको आध्यात्मिक आकांक्षा की ज्वाला को प्रदीप्त रखने के लिए प्रतिदिन जप, ध्यान, स्वाध्याय एवं सत्संग करना चाहिए। यदि साधक इनकी अवहेलना करता है, तो धीरे-धीरे आध्यात्मिक आकांक्षा की ज्वाला बुझ जायेगी तथा साधक पुन: सांसारिकता में डूब जायेगा। इस सम्बन्ध में भगवान् श्री कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं, ''**कालेनेह महता योगो नष्ट: परन्तप**—हे अर्जुन! समय के प्रवाह के साथ यह महान् योग-विज्ञान नष्टप्राय हो गया।'' इसलिए आध्यात्मिक जीवन में सफलता हेतु दैनिक साधना अत्यावश्यक है।

मेरी परमपिता परमात्मा एवं श्री गुरुदेव के चरणारविन्द में यही विनम्र प्रार्थना है कि वे आप सब पर अपने आशीर्वाद एवं अनुग्रह की वृष्टि करें तथा आपको अच्छा स्वास्थ्य, प्रसन्नता एवं आध्यात्मिक पथ पर प्रगति प्रदान करें।

अभिनन्दन सहित

आपका एवं श्री गुरुदेव की सेवा में,

स्वामी योगस्वरूपानन्द

परमाध्यक्ष

मानव से ईश–मानव :

श्री स्वामी शिवानन्द जी का व्यक्तित्व

(श्री एन. अनन्तनारायणन्)

(पूर्व-अंक से आगे)

और यह सत्य था। गुरुदेव ने पारम्परिक विधिवत् देवी-उपासना नहीं की। यह बात स्वामी जी ने उस समय स्वयं ही स्पष्ट की थी, जब दक्षिण भारत के एक विद्वान् पण्डित ने उनसे कहा था कि स्वामी जी ने श्रीविद्या में परिपूर्णता प्राप्त कर ली होगी, और यह भी कि उन्हें समस्त कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकना तभी तो सम्भव हुआ होगा। तब गुरुदेव ने उन्हें बताया :

''मैंने विधिवत् श्रीविद्या-उपासना नहीं की है। प्रतिदिन स्नान के उपरान्त मैं अन्य अनेक मन्त्रों के साथ इस मन्त्र का जप करता हूँ। केवल एक ही बार मैं यह मन्त्र बोलता हूँ। किन्तु आप जो यह कहते हैं कि मैंने श्रीविद्या की उपासना की है तो वह सम्भवतया सत्य है। यह एक भिन्न प्रकार की है। जब भी मैं किसी स्त्री को देखता हूँ, मैं मन-ही-मन में उसके चरणों में प्रणाम करता हूँ और किसी-न-किसी देवी मन्त्र का मानसिक उच्चारण करता हूँ, जैसे **ॐ श्री दुर्गायै नमः** अथवा ऐसा ही कोई अन्य मन्त्र। समस्त महिलाओं में, मैं माँ भगवती का जीवन्त रूप देखता हूँ। जब मैं मस्तक पर कुमकुम टीका लगाता हूँ तो **ॐ ह्रीं ॐ** कहता हूँ। यही मेरी श्रीविद्या-उपासना है।''

एक सच्चे भक्त की भाँति स्वामी जी ने सभी देवी-देवताओं की उपासना की, समस्त सन्तों की पूजा की, सभी उत्सव श्रद्धा सहित मनाये। वास्तविक वेदान्ती के रूप में वे सदैव परम चैतन्य में सुस्थित रहे। कर्मयोगी के समान परमात्मा की इस सृष्टि में प्रत्येक में भगवान् को ही देखते हुए उन्होंने यथासम्भव सबकी हर प्रकार से सेवा की। राजयोगी की भाँति उन्होंने जाने-अनजाने विविध लौकिक एवं अलौकिक शक्तियों का उपयोग किया, किन्तु केवल दूसरों के कल्याण हेतु ही किया।

उनकी सरल दृष्टि में और कौतूहल मात्र के लिए पूछने वाले आगन्तुकों को दिये गये सरल से उत्तरों में उनके आध्यात्मिक अनुभवों की निधि निहित थी। उनके साधना-काल की अवधि में (और ध्यान देने की बात यह है कि उनकी यह अवधि संन्यासोपरान्त भी उसी तरह चलती रही थी) उन्होंने असंख्य प्रकार की साधनाएँ कीं और उतने ही अनुभव तथा शक्तियाँ भी अर्जित कीं। ये समस्त अनुभूतियाँ उन्होंने अपने लेखों के माध्यम से संसार को दीं; किन्तु 'मेरे अनुभव' शीर्षक के रूप में नहीं, अपितु आध्यात्मिक शिक्षा के रूप में दीं; जिसमें उन्होंने साधना के दौरान आने वाली सूक्ष्मतम समस्याओं तक के सम्बन्ध में सूक्ष्मातिसूक्ष्म निर्देश दिये। और ये शिक्षाएँ योग के प्रत्येक पहलू को छूती हैं, हर प्रकार की साधना को स्पर्श करती हैं। ये संख्या में सौ से भी अधिक ग्रन्थों में निहित हैं।

किन्तु, गुरुदेव के लेखों में व्यक्ति को गुरुदेव के निजी अनुभवों की उल्लसित अभिव्यक्तियाँ यत्र-तत्र यथा रूप में मिल जाती हैं। उनमें एक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त सन्त के आनन्दातिरेकपूर्ण भावोद्गार प्रकट होते हैं। महान् भूमा अनुभूति कैसी होती है, इसका वर्णन करने का स्वामी जी प्रयत्न करते हैं :

''मैंने स्वयं को विशाल असीम आनन्द में लीन कर दिया,
शाश्वत आनन्द-सागर में मैं तैरने लगा,
अनन्त शान्ति में मैं बहने लगा,

अहम् घुल गया, विचार थम गये,
बुद्धि ने कार्य करना छोड़ दिया,
इन्द्रियाँ अन्तर्लीन हो गयीं;
जगत् के प्रति मैं सोया ही रहा;
स्वयं को मैंने सर्वत्र देखा....''

'माई ओरिजनल होम' में गुरुदेव हमें यह बताने का प्रयास करते हैं कि यह सब कैसे हुआ :

''अपने परिपूर्ण पावन सच्चे निजी घर, ब्रह्मपुरी
की दुष्कर यात्रा मैंने आरम्भ की।
मैंने प्रेम-घृणा का सघन-वन पार किया,
जगत् के भले-बुरे से कहीं दूर निकल गया,
और असीम मौन के क्षेत्र की सीमा तक आ गया,
अन्तरवासी आत्मा की भव्यता को मैंने पा लिया।
आनन्दातिरेक से मैं स्तब्ध और अवाक् खड़ा रह गया।
एक अद्भुत कम्पन सारे शरीर में फैल गया।
आनन्द के सागर में मन का विलय हो गया,
अनन्त अज्ञात में अहंबोध पिघल गया,
बस है एक अखण्ड आनन्द का असीम साम्राज्य,
जहाँ न कोई समय है, न विचार, न ही कोई क्लेश!''

'दी डॉन ऑफ़ ए न्यू लाइफ' में स्वामी जी ने अनिर्वचनीय को अभिव्यक्त करने का पुनः प्रयत्न किया है :

''मेरे सभी दुःख समाप्त हो गये हैं,
मेरा हृदय अब हर्ष से परिपूर्ण है,
शान्ति अब मेरी आत्मा तक व्याप्त है।
सभी संशय, भय और भ्रम उड़ गये हैं।
मुझे अचानक स्वयं में से ऊपर उठा लिया गया,
और एक नूतन जीवन का सवेरा हो गया,
मैंने अन्तर-जगत् का सत्य अनुभव किया।
उस अदृश्य से मेरा मन और आत्मा भर गया।
मैंने विशाल में, देदीप्यमान मौन में प्रवेश किया।
मैं अनिर्वचनीय दीप्ति से आप्लावित हो गया।
मैं सम्पूर्ण जीवन के गुप्त स्रोत में पहुँच गया।
जो समस्त विश्व को प्रकाशित करता है, वह प्रकाश मैं हूँ।''

गुरुदेव की 'स्पीचलैस ज़ोन' शीर्षक की कविता की लगभग प्रत्येक पंक्ति में रहस्यवाद की धड़कन सुनायी देती है :

''उस परिपूर्ण, नाम-रूप रहित शून्य में,
आनन्द के असीम विस्तार में,
निराकार क्षेत्र में, मन-रहित हर्ष में,
देश-काल से रहित साम्राज्य में,
वाणी से परे के क्षेत्र, विचारों से विहीन शान्ति में,
मधुर समरसता के लोकोत्तर आगार में,
परम प्रकाश से मैं एक हो गया।
हम दो हैं या दो एक यह विचार ही लुप्त हो गया।
जन्म-मृत्यु का सागर सदा के लिए पार हो गया।
यह सब उस प्रभु की कृपा से ही हुआ है
जिसने वृन्दावन में मधुर नृत्य किया था,
जिसने ग्वालों पर गोवर्धन का छत्र किया था।''

लक्ष्य-प्राप्ति के बाद भी वे सन्त लोगों के मध्य एक सामान्य मनुष्य की भाँति घूमते रहे। किन्तु आत्म-साक्षात्कार प्राप्त एक दिव्यात्मा की सुवास कौन छुपा सकता था? यह सब ओर फैल गयी, संसार में चारों ओर, सागरों से पार तक व्याप्त हो गयी। लोग उसके आकर्षण से खिंचने लगे। और इस प्रकार जो इस ईश-मानव के सम्मोहन में आये, वे उसमें सराबोर हो गये, उनका जितना प्रकाश अपनी क्षमतानुसार ग्रहण कर सकते थे, साथ ले गये। और ईश-मानव शिवानन्द शान्त-प्रशान्त, समदर्शी, निष्पक्ष थे। ''जो भी मुझ पर अपना अधिकार मानता है, मैं उसी का हो जाता हूँ'' यह उनकी उद्घोषणा थी। और सहस्रों, लाखों ने उनको गुरु, रक्षक, उद्धारक मान कर अपना अधिकार प्राप्त कर लिया।

(समाप्त)

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

शिवानन्द ज्ञानकोष :

गुरु

(परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

(पूर्व-अंक से आगे)

गुरु के प्रति अनन्य निष्ठा

जल प्राप्ति के लिए अनेक उथले गड्ढे खोदने का विफल प्रयास नहीं करिए, वे तो शीघ्र ही सूख जायेंगे। एक ही स्थान पर पर्याप्त गहरा गड्ढा खोदिए, अपने यथाशक्ति परिश्रम को उसी में केन्द्रित करिए, आपको स्वच्छ तथा शुद्ध जल पर्याप्त मिलेगा जो शीघ्र समाप्त नहीं होगा, ठीक इसी प्रकार एक ही गुरु की शिक्षाओं को मन में धारण करिए। एक ही गुरु द्वारा ज्ञानामृत का पान करिए। उन्हीं के चरणों में निष्ठापूर्वक कई वर्षों तक वास करिए, श्रद्धा रहित हो कर एक सन्त से दूसरे के पास कौतूहलवश भागते रहने से कोई लाभ नहीं, वेश्या की न्याईं मन को बदलते न रहिए, एक ही सद्गुरु के निर्देशों का सप्रीति पालन कीजिए। अनेकों के पास जा कर अनेक विधियाँ अपनाने से आप भ्रमित हो कर द्विविधा में पड़ जायेंगे।

एक चिकित्सक से तो उपचारार्थ नुस्खा मिलता है। दो चिकित्सकों से परामर्श लिया जाता है, परन्तु तीन डॉक्टरों से तो हम अपनी मृत्यु स्वयं निमन्त्रित करते हैं, अत: अनेक गुरुओं के चक्कर में पड़ कर हम स्वयं घबरा जायेंगे, न ही सही दिशा जान पायेंगे, एक गुरु तो **'सोऽहम्'** का जप बतायेगा, दूसरा श्रीराम का, तीसरा अनहद-नाद सुनने को कहेगा। आप भ्रमित हो जायेंगे।

अत: एक सद्गुरु की शरण उन्हीं में अनन्य निष्ठा रख कर उनके उपदेशों का आदेशों का, दृढ़तापूर्वक पालन कीजिए।

श्रद्धा सबमें रख सकते हैं, पर निष्ठा तथा अनन्यता एक के प्रति ही हो सकती है; आदर सबका करिए पूजा एक की, ज्ञान-संग्रह सबसे करिए, किन्तु अनुसरण करिए एक ही के आदेशों का, तभी आपकी प्रगति सुपथ पर होती जायेगी।

गुरु-परम्परा

आध्यात्मिक ज्ञान गुरु से शिष्य तक गुरुपरम्परानुसार चलता है। गुरु अपनी आध्यात्मिक सम्पदा योग्यतम शिष्य को सौंपता है—जैसे गौड़पादाचार्य जी ने अध्यात्म-ज्ञान गोविन्दाचार्य जी को प्रदान किया, गोविन्दाचार्य जी ने शंकराचार्य जी को, शंकराचार्य जी ने सुरेश्वराचार्य जी को। अध्यात्म-सम्पदा का इस तरह गुरुपरम्परानुसार आदान-प्रदान होता रहा है—गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी ने गुरु गोरखनाथ जी को ज्ञान दिया, तो गोरखनाथ जी ने निवृत्तिनाथ जी को और निवृत्तिनाथ जी ने ज्ञानदेव जी को, श्री तोतापुरी जी ने रामकृष्ण परमहंस को आत्मज्ञान दिया तो श्री रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को, राजा जनक के जीवन को अष्टावक्र ने ढाला, राजा भर्तृहरि का जीवन गोरखनाथ जी ने पलटा, भगवान् श्रीकृष्ण ने अस्थिर चित्त वाले अर्जुन तथा उद्धव को स्थितप्रज्ञ बनाया।

मन्त्र-दीक्षा तथा उसका महत्त्व

एक भक्त-सन्त ही भक्ति के पथ की दीक्षा दे सकने में समर्थ होता है। एक प्रकाण्ड ज्ञानी ही वेदान्त के जिज्ञासुओं को महावाक्यों में दीक्षित कर पायेंगे, एक हठयोगी अथवा राजयोगी दूसरों को अपने पथ की दीक्षा देंगे, परन्तु एक पूर्ण योगी अथवा पूर्ण ज्ञानी जिसने साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है किसी भी पथ में दीक्षित कर सकेंगे—जैसे आदि गुरु शंकराचार्य अथवा मधुसूदन सरस्वती के समान ज्ञानी हो तो किसी को भी कहीं पर भी उसकी क्षमता अनुसार किसी भी योग में दीक्षित कर सकते हैं। गुरु शिष्य के स्वभाव तथा रुचि के अनुसार निर्णय ले कर ही निश्चित पथ में दीक्षित करते हैं। यदि शिष्य का मन शुद्ध न पाया गया तो कई वर्षों तक उसे निष्काम सेवा में लगाये रखते हैं। तत्पश्चात् निर्णय ले कर जिस भी योग का अधिकारी बनाया गया उसमें दीक्षित करते हैं।

दीक्षित करने का अभिप्राय केवल इतना ही नहीं होता कि कोई भी मन्त्र शिष्य के कानों में फूँक दिया जाये,

यदि कोई मनुष्य कृष्ण-प्रेमी है तो उसे एक प्रकार से कृष्ण-मन्त्र की दीक्षा मिल चुकी है। यदि कोई साधक किसी सन्त की पुस्तकें पढ़ कर उसके विचारों को आत्मसात् कर चुका है तो वही सन्त उसके गुरु बन चुके हैं।

शक्ति-संचार

शक्ति-संचार भी किसी आध्यात्मिक शक्तिमान् द्वारा किसी दूसरे पर किया जा सकता है, जैसे आप किसी को भी सन्तरा दे देते हैं। शक्ति को दूसरे तक पहुँचाना ही शक्ति-संचार कहलाता है। इस प्रक्रिया द्वारा सद्गुरु अपने आध्यात्मिक स्फुरण अपने योग्यतम शिष्य के मन तक पहुँचाता है।

सद्गुरु जिस शिष्य को भी शक्ति-संचार का पात्र समझता है उस पर ही शक्ति-संचार करता है। ऐसा समर्थ गुरु अपनी दृष्टि मात्र से, स्पर्श से, शब्द या विचार से, यहाँ तक कि केवल संकल्प मात्र से शक्ति-संचार कर सकता है।

शक्ति-संचार भी परम्परानुसार चलता है। यह एक रहस्यमयी विद्या है। यह एक सद्गुरु से सद्-शिष्य को प्रदान की जाती है।

भगवान् ईसामसीह ने अपनी शक्ति का संचार अपने शिष्यों तक स्पर्श द्वारा किया। समर्थ गुरु रामदास के एक शिष्य ने एक नर्तकी की कन्या पर शक्ति-संचार किया जो उस पर आसक्त हो चुकी थी। शिष्य ने उस पर दृष्टि डाली और उसकी समाधि लग गयी, उसकी कामेच्छा नष्ट हो गयी और वह धर्मपरायण हो कर आध्यात्मिकता के पथ की अनुगामिनी हो गयी। भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य स्पर्श द्वारा प्रज्ञाचक्षु सूरदास की अन्तर्प्रज्ञा खुल गयी और उनकी भाव समाधि लग गयी। गौरांग महाप्रभु भी अपने चुम्बकीय स्पर्श से कई एक को दिव्योन्माद प्रदान कर अपनी ओर आकर्षित कर लिया करते थे। यहाँ तक कि नास्तिक भी मस्ती में आ कर गलियों में भाव-नृत्य करना आरम्भ कर देते और '**हरि बोल, हरि बोल**' का सुमधुर संकीर्तन करते रहते।

सद्गुरु द्वारा संचार प्राप्त कर लेने से शिष्य को सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए, अपितु यथाशक्ति अथक प्रयास द्वारा साधना में उत्तरोत्तर प्रगति पथ की ओर अग्रसर रहना चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द पर शक्ति-संचार किया तो भी स्वामी जी ने घोर तपश्चर्या में पूरा एक वर्ष लगा दिया और इस प्रकार की योग-साधना द्वारा पूर्णता प्राप्त की।

गुरु-कृपा और आत्म-प्रयत्न

गुरु के केवल चमत्कार मात्र से साक्षात्कार नहीं हो जाता। महात्मा बुद्ध, ईसामसीह तथा स्वामी रामतीर्थ ने घोर साधना की थी। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को वैराग्य तथा अभ्यास करने पर बल दिया। उन्होंने उसे यह नहीं कहा था कि मैं तुम्हें अभी मुक्ति देता हूँ। अत: इस भ्रम में नहीं रहिए कि गुरु ही आपकी समाधि लगवा देंगे या मुक्ति प्रदान करेंगे। प्रयत्न करते रहिए, मन की शुद्धता ग्रहण कीजिए, ध्यान में लीन रहिए, नि:सन्देह साक्षात्कार करेंगे।

गुरु-कृपा अत्यावश्यक है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शिष्य निठल्ला हो कर बैठा रहे, उसे कठोर परिश्रमी तथा आध्यात्मिक अभ्यासी बनना होगा। सारा पुरुषार्थ शिष्य को स्वयं करना होगा। आजकल लोग संन्यासी के कमण्डल से एक बिन्दु जल ले कर तत्काल समाधिस्थ होना चाहते हैं। वे न तो मानसिक शुद्धि के लिए और न ही साधना करने को तैयार होना चाहते हैं। वे तो चाहते हैं कि जादू की तरह समाधि लग जाये। यदि आपका ऐसा भ्रम हो तो उसे शीघ्र मन से निकाल दीजिए।

गुरु तथा शास्त्र तो केवल मार्ग-दर्शन कर सकते हैं, संशय-निवारण कर देते हैं, अपरोक्ष का अनुभव तथा अन्तर्ज्ञान की प्राप्ति स्वयं तुम्हें करनी होगी। क्षुधा-निवारण स्वयं करना पड़ता है (यदि कहीं खुजली हो तो अपने हाथ से ही खुजलाना पड़ता है)।

नि:सन्देह सद्गुरु के आशीर्वाद से सब-कुछ प्राप्त हो सकता है। प्रश्न यह है कि गुरु-आशीर्वाद कैसे प्राप्त हो, गुरु की कृपा सन्तोष तो तभी होगा यदि शिष्य उसकी आज्ञानुसार आध्यात्मिक शिक्षाओं का पूर्णतया पालन करे, अत: गुरु की आज्ञा का पालन तो ध्यानपूर्वक करना होगा। तब ही गुरु-कृपा के अधिकारी बन पायेंगे। तभी आशीर्वाद पूर्णतया सफल होगा।

(समाप्त)

(अनुवादक : श्री स्वामी अर्पणानन्द जी महाराज)

बाल जगत्

विद्यार्थी जीवन में सफलता

ज्योति-सन्तानो!

नमस्कार! ॐ नमो नारायणाय!

प्रिय अमृत पुत्रो!

क्रोध, लोभ, द्वेष, घृणा—ये सभी शान्ति के शत्रु हैं। शुभेच्छा, सहयोग, करुणा, अहिंसा, क्षमा, सन्तोष, विश्व-प्रेम तथा भद्रता का अर्जन कीजिए। उसके लिए प्रार्थना कीजिए जिसने आपको हानि पहुँचायी है। उसके प्रति तथा समस्त संसार के प्रति शान्ति एवं शुभेच्छा की विचार-तरंगों को प्रेषित कीजिए।

यदि आप स्वार्थ, लोभ तथा अभिमान का उन्मूलन कर लेंगे तो प्रकृति आपके लिए काम करेगी। वैयक्तिक इच्छा सामष्टिक इच्छा के साथ एक बन जायेगी। आपका लक्ष्य ब्रह्माण्ड के लक्ष्य के साथ एक बन जायेगा। आपके लिए सब-कुछ सुलभ हो जायेगा। आपके मार्ग में कोई बाधा न रहेगी। आप चिन्ता, उद्वेग, उत्तरदायित्व तथा भय से मुक्त रहेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

सद्गुणों का अर्जन

दया (Compassion)

दया दूसरों के कष्ट-पीड़ा से उत्पन्न दु:ख का भाव अथवा सहानुभूति है।

दया के द्वारा आप दूसरों के दु:ख को अपना दु:ख समझते हैं तथा उन्हें दु:खमुक्त करके आप स्वयं को भी दु:ख से मुक्त करते हैं।

दया का विकास करिए। मृदु एवं कोमल हृदयी बनिए। दूसरों के कष्टों को समझिए और सदैव उनकी सहायता के लिए तत्पर रहिए।

समस्त विश्व एक परिवार है। सभी ईश्वर की सन्तान हैं। समस्त विश्व आपका निवास-स्थान है। इसका अनुभव करिए। अपने हृदय को दयाशील बनाइए। जो आपके पास है, उसे दूसरों के साथ बाँटिए। पीड़ितों के अश्रु पोंछिए। ईश्वर आपको आशीर्वादित करेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

दुर्गुणों का नाश

आत्म-प्रशंसा (Boasting)

आत्म-प्रशंसा व्यर्थ दिखावा अथवा स्वयं की प्रशंसा है। यह स्वयं के विषय में गर्वपूर्ण अर्थात् बढ़ा-चढ़ा कर बोलना है।

जो आप कर सकते हैं अथवा करेंगे, उसके विषय में गर्वपूर्वक बात मत करिए। कार्य शब्दों से अधिक प्रभावकारक होते हैं। कार्य ही वास्तविक उपलब्धि है।

ज्ञानी के लिए विनम्रता सहज है। अज्ञानी के लिए आत्म-प्रशंसा सहज है।

सूर्य को अपने प्रकाश तथा चन्द्रमा को अपनी दीप्ति के विषय में गर्वित रूप में कुछ कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। ईमानदार एवं साहसी व्यक्तियों को अपनी ईमानदारी तथा साहस के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं होती है।

प्राय: अत्यधिक आत्म-प्रशंसा करने वाले व्यक्ति न्यूनतम कार्य करने वाले होते हैं। जल से पूर्ण गहरी विशाल नदियाँ, छिछली छोटी नदियों की अपेक्षा समुद्र को अधिक जल समर्पित करती हैं तथा वे ऐसा शान्तिपूर्वक अर्थात् बिना अधिक ध्वनि किये करती हैं।

—स्वामी शिवानन्द

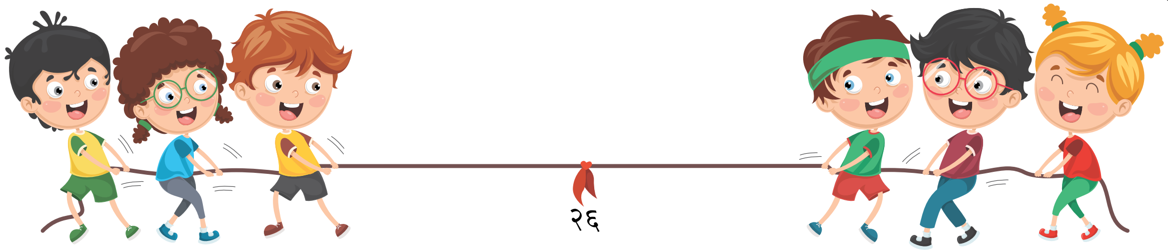

हलासन

विधि : हाथों को अपने दोनों ओर तथा हथेलियों को भूमि पर रख कर पीठ के सहारे चित लेट जायें। अपने पैरों को परस्पर मिला कर रखें जिससे एक पैर का अँगूठा और एड़ी दूसरे पैर के अँगूठे और एड़ी को स्पर्श करें। पैरों को घुटनों से बिना मोड़े धीरे-धीरे यहाँ तक उठायें कि वे धड़ के साथ एक समकोण बन जायें। हाथों को भूमि पर रखे हुए नितम्ब और पृष्ठ के कटि-भाग को ऊपर उठायें और पैरों को शिर के परे फर्श पर नीचे लायें। ठुड्डी को वक्ष पर दबायें और नासिका से शनैः-शनैः श्वास लें तथा निकालें। अपनी हथेलियों, कलाइयों तथा

हाथों को फर्श पर रखें। अपने घुटनों को उठायें और पैर की उँगलियों को यथासम्भव फैला दें। प्रारम्भ में धीमी, गहरी श्वास-प्रश्वास के साथ कुछ सेकण्ड तक इस आसन में रहें। सम्पूर्ण मेरुदण्ड तथा उदर पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। ग्रीवा-प्रदेश को शिथिल करें। अब धीरे-धीरे एक-एक अंश कर पैर ऊपर की ओर उठायें और उनको शनैः-शनैः पीठ के बल चित लेटने की पूर्व-आकृति में ले आयें। अपनी क्षमता और सुविधा के अनुसार धीरे-धीरे एक से तीन मिनट तक समय बढ़ायें।

रूपान्तर : अपने घुटनों को उठाने और पैर की उँगलियों को यथासम्भव फैलाने के पश्चात् आप हाथों को पैरों की ओर ले जा कर उनकी उँगलियों को पकड़ सकते हैं।

लाभ : पीठ एवं रीढ़ की हड्डी तथा कन्धों की विभिन्न व्याधियाँ तथा जटिलताएँ और पेट तथा कोहनियों की पीड़ा इससे दूर हो जाती है। मेरुदण्ड लचीला तथा दृढ़ हो जाता है। उदरीय पेशियों में

नवजीवन का संचार होता है। उदरीय अंगों, मेरुदण्ड-प्रदेश, पीठ एवं ग्रीवा में रुधिर का संचार होता है। यह आसन उदर, जाँघों और नितम्बों के मोटापे की अधिकता को क्षीण करता है।

— स्वामी चिदानन्द

कपालभाति प्राणायाम

'कपाल' का अर्थ है ललाट तथा 'भाति' का अर्थ है चमकना। यह व्यायाम कपाल को स्वच्छ करता है। इस प्रकार यह एक शुद्धिकारक व्यायाम हो जाता है। इसका नियमित अभ्यास अभ्यासकर्ता को देदीप्यमान मुख (चेहरा) प्रदान करता है। यह साधक को भस्त्रिका-प्राणायाम के अभ्यास के लिए तैयार करता है।

विधि : बैठने वाले आसनों में से किसी एक में बैठें और मेरुदण्ड तथा ग्रीवा सीधी रखें। निम्न पेडू को थोड़ा क्रियाशील करने के साथ ही नासारन्ध्रों से तीव्र गति से रेचक (श्वास छोड़ना) करें। नासाग्र पर मन एकाग्र करें। आपको चेहरे की मांसपेशियों को सिकोड़ना नहीं चाहिए। प्रत्येक रेचक के पश्चात् लघु पूरक (श्वास लेना) करना चाहिए। प्रारम्भ करने के लिए आप एक रेचक प्रति सेकण्ड की गति से कर सकते हैं और आप एक या दो आवर्तन का अभ्यास कर सकते हैं। प्रत्येक आवर्तन आठ या दश रेचकों का हो। प्रत्येक आवर्तन के पश्चात् सामान्य श्वास-प्रश्वास के साथ विश्राम करें। जब व्यक्ति अभ्यास में पर्याप्त प्रगति कर ले तो वह प्रत्येक आवर्तन में १२० रेचक तक पहुँचने तक प्रत्येक आवर्तन में दश रेचक की दर से प्रति सप्ताह वृद्धि कर सकता है। प्रातः और सायं दो या तीन आवर्तन किये जा सकते हैं।

लाभ : यह व्यायाम कपाल, श्वास-तन्त्र और नासा-पथों को स्वच्छ करता है। यह श्लेष्मा के रोगों को नष्ट करता है तथा श्वास-नली की ऐंठन को दूर करता है। परिणामतः दमा में आराम और आरोग्यता भी प्राप्त होती है। रुधिर की अशुद्धता भी निर्गत हो जाती है। हृदय समुचित रूप से कार्य करने लगता है। रक्तवह-तन्त्र, श्वसन-तन्त्र और पाचन-प्रणाली पर्याप्त मात्रा में आरोग्यवान् हो जाते हैं।

— स्वामी चिदानन्द

मुख्यालय आश्रम में दीपावली महोत्सव

दीपावली के पावन दिवस का आगमन प्रत्येक वर्ष हम सबको यह स्मरण कराने के लिए होता है कि हम प्रकाश में जीवन जियें और समस्त प्रकाशों के प्रकाश, परब्रह्म को प्राप्त करें। ज्योतियों का यह भव्य दिवस मुख्यालय आश्रम में १४ नवम्बर को अत्यन्त आध्यात्मिक उत्साह सहित मनाया गया। सहस्रों की संख्या में मिट्टी के दीपक समस्त आश्रम को जगमगाते हुए सभी के हृदयों को आनन्द-विभोर कर रहे थे।

रात्रि सत्संग में, पावन समाधि मन्दिर में अत्यन्त सुसज्जित वेदिका पर प्रतिष्ठित माँ लक्ष्मी

की विशेष पूजा की गयी। नियमित पारायणों के उपरान्त परम पूज्य श्री स्वामी पद्मनाभानन्द जी महाराज ने कनकधारा स्तोत्र तथा महालक्ष्म्याष्टक का पारायण किया तथा सद्गुरुदेव का दीपावली सन्देश पढ़ा। उसके बाद शनिवार होने के कारण श्री हनुमान चालीसा एवं संकटमोचन अष्टकम् का सामूहिक पाठ हुआ। इस पावन अवसर के उपलक्ष्य में सद्गुरुदेव की तीन पुस्तकों का विमोचन किया गया। माँ लक्ष्मी की अष्टोत्तरशतनामावली के साथ पुष्पार्चना, आरती और प्रसाद वितरण के साथ सत्संग सम्पन्न किया गया।

समस्त ज्योतियों की परम ज्योति परम पिता परमात्मा एवं सद्गुरुदेव की कृपा हमें ज्ञान का प्रकाश प्रदान करे।

मुख्यालय आश्रम में श्री स्कन्द षष्ठी उत्सव

श्री स्कन्द षष्ठी, स्कन्द भगवान् द्वारा असुर शक्तियों पर महिमाशाली विजय प्राप्त करने का आनन्दोत्सव है। मुख्यालय आश्रम में यह शुभ अवसर १५ से २० नवम्बर, २०२० तक यथोचित पावनता सहित मनाया गया।

इन सभी छह दिनों में, पूर्वाह्न में भजन हॉल में प्रतिष्ठित स्कन्द भगवान् के विग्रह की अत्यन्त श्रद्धा सहित वैदिक मन्त्रों के पारायण के साथ अभिषेक एवं अर्चना की गयी। आश्रम के संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और साधकों ने भगवान् के अभिषेक और अर्चना में अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भाग लिया। आरती एवं प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम सम्पूर्ण किया गया।

स्कन्द भगवान् और सद्गुरुदेव की कृपा हमें अज्ञान एवं सांसारिकता की आसुरी शक्तियों के साथ चलने वाले संघर्ष में विजय प्रदान करे।

मुख्यालय आश्रम में परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज के १९ वें पुण्यतिथि आराधना दिवस का समारोह

परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की पुण्यतिथि आराधना का पावन दिवस मुख्यालय आश्रम में गोपाष्टमी अर्थात् २२ नवम्बर २०२० को अत्यन्त भक्तिभाव सहित मनाया गया।

इस पावन दिवस के उपलक्ष्य में समाधि मन्दिर में परम पूज्य सद्गुरुदेव की पावन पादुकाओं की विशेष पूजा की गयी जिसमें आश्रम के समस्त वरिष्ठ स्वामी जी, संन्यासी, ब्रह्मचारी और साधक अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति सहित सम्मिलित हुए। पादुका पूजा के उपरान्त संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियों ने परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज को प्रेमपूर्ण श्रद्धांजलि के रूप में भजन और कीर्तन समर्पित किये। फिर परम पूज्य श्री स्वामी योगस्वरूपानन्द जी महाराज और परम पूज्य श्री स्वामी निर्लिप्तानन्द जी महाराज ने अपने संक्षिप्त सन्देशों में परम पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के प्रेरणाप्रद जीवन पर प्रवचनों से उपस्थित श्रोताओं को आशीर्वादित किया।

परम पूज्य श्री स्वामी जी महाराज की एक पुस्तक, 'दी प्रॉबलम ऑफ स्पिरिचुअल लाइफ' तथा तीन पुस्तिकाएँ, 'दी सौंग ऑफ गॉड आलमाइटी', 'दी पाथ टू गॉड-रियलाइज़ेशन पार्ट वन' तथा 'स्पिरिचुअल एवोल्यूशन एकॉर्डिंग टू भगवद्गीता' भी इस पावन दिवस के उपलक्ष्य में विमोचित की गयीं। आरती, प्रसाद और ज्ञान-प्रसाद वितरण के साथ सत्संग सम्पूर्ण हुआ।

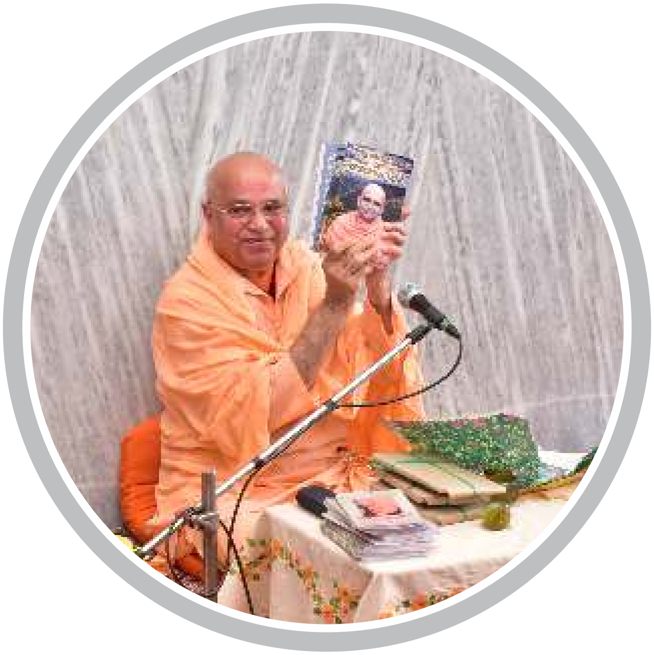

सर्वशक्तिमान् परमात्मा, सद्गुरुदेव तथा परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की कृपा सब पर हो।

शिवानन्द होम द्वारा सेवा

''शिवानन्द होम उन एकाकी एवं मरणासन्न लोगों की प्रेमपूर्ण देख-रेख का एक केन्द्र है, जो सड़क के किनारे पड़े मिलते हैं, जिनकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं है, जिन लोगों के रहने के लिए कोई घर नहीं है, जिनका न तो स्थायी और न ही अस्थायी रूप से कोई ठिकाना है, जो रोगग्रस्त हो जाते हैं, गुम हो जाते हैं अथवा अपने परिवार द्वारा त्याग दिये जाते हैं।''

—परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

होम के महिला वार्ड की एक अन्तेवासिनी के रूप में ९० वर्षीय वह रोगिणी गत पाँच वर्षों से भी अधिक समय से पूर्णतया शैयाग्रस्त अवस्था में थी। उसकी शारीरिक स्थिति गतिहीनता और पराधीनता की कष्टदायक प्रक्रिया थी, और उसकी मानसिक स्थिति कभी स्वयं को सँभालने के प्रयास की, कभी चीख-पुकार की, कभी रात-भर की अनिद्रा की एक कष्टपूर्ण शृंखला थी। किन्तु भगवान् पाण्डुरंग का नाम उसे उठा देने के लिए, चेहरे पर मुस्कान लाने के लिए पर्याप्त था। कई बार बैठाने, करवट बदलवाने या स्नान करवाने के समय वह भी साथ-साथ पाण्डुरंगा-विट्ठला... विट्ठला...विट्ठला...विट्ठला गाने लगती थी। गत सप्ताह से उसके भोजन लेने की मात्रा बहुत ही कम रह गयी थी और एक दिन जब उससे पूछा कि उसे क्या खाने की इच्छा है तो उसका अत्यन्त संक्षिप्त और स्पष्ट उत्तर था : ''खीर!'' उसने लगभग आधी कटोरी खीर की खा ली और उसके बाद एक-दो घूँट पानी पिया, दो-तीन गहरे श्वास छोड़े होंगे और बस पूर्णतया शान्त हो कर चल बसी। उसकी आत्मा शाश्वत शान्ति को प्राप्त करे। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

शिवानन्द होम में वयोवृद्ध एवं असुरक्षित रोगियों को स्थान दिया जाता है, असुरक्षित—शारीरिक अथवा मानसिक दोनों की दृष्टि से ही—हृदय की पीड़ा बाहर से दिखायी न देने पर भी भीतर से रोगी में तनाव, चिन्ता, परित्यक्तता अथवा एकाकीपन से मनुष्य को ग्रसित कर लेती है। यद्यपि मेडिकल उपचार मनुष्य के शारीरिक रोग के लिए शिवानन्द होम की सुविधाओं के आवश्यक पहलुओं में से है, किन्तु धीरे-धीरे व्यक्ति बचाव और सुरक्षा के पहलुओं का महत्त्व जानने लगता है। जहाँ मन सुख-शान्ति में हो, वहाँ शरीर को पुनः शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ होने लगता है। गत दिनों में होने वाली नन्हें बिलौटों की घटना को स्मरण करते हुए एक बार एक बिलौटों के प्रेमी को पूछा गया : ''तुम्हारा इनसे इतना अधिक प्रेम होने का क्या कारण है—उन्हें बार-बार पुकारना, पुचकारना, प्यार से थपथपाना? क्या इनकी असहाय अवस्था तुम्हारे मन में इनके प्रति इतना आकर्षण उत्पन्न करने का कारण है या फिर, और क्या कारण हो

सकता है?'' उत्तर अत्यन्त हृदयस्पर्शी था। ''नहीं,'' उसने कहा, ''इनकी असहाय दशा नहीं, इनकी शरणापन्नता है। इनका यह भरोसा है कि यद्यपि ये पूरी तरह से अनजान और अलग जगह से आये हैं तो भी इतने अधिक सहज-विश्वास से पूर्ण हैं कि ये हर तरह से सुरक्षित हैं...।''

यही प्रार्थना है कि हमारे जीवन में भी प्रत्येक परिस्थिति में भगवान् में, सद्गुरुदेव में ऐसा विश्वास बना रहे।

''हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें। तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें। सदा तुम्हारा ही स्मरण करें। सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें। तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो। सदा हम तुममें ही निवास करें।''

—परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

सेवा का उद्देश्य क्या है? दीन, दरिद्र और पीड़ित मानवता की सेवा क्यों करते हैं? समाज और देश की सेवा किस लिए करते हो? हाँ, सेवा के द्वारा तुम्हारा हृदय शुद्ध होता है। अहंभाव, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता की भावना और इसी प्रकार की सारी कुत्सित भावनाओं का नाश होता है तथा नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और दया जैसे गुणों का विकास होता है। सेवा से स्वार्थ-भावना मिटती है। द्वैत-भावना क्षीण होती है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण विशाल और उदार बनता है। एकता का भान होने लगता है। परिणामस्वरूप आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने लगता है। एक में सब और सबमें एक की अनुभूति होने लगती है। तभी असीम सुख प्राप्त होता है। आखिर समाज क्या है? अलग-अलग व्यक्तियों या इकाइयों का समूह ही तो है। ईश्वर ही के व्यक्त रुप के अलावा विश्व कुछ नहीं है। सेवा ही पूजा है। लेकिन सेवा में भाव चाहिए। तभी हृदय-शुद्धि और त्वरित साक्षात्कार सम्भव है।

भेद-भावना घातक होती है; अत: उसे मिटा देना चाहिए। उसे मिटाने के लिए ब्रह्म-भावना का, चैतन्य की अद्वैतता का विकास और नि:स्वार्थ सेवा की आवश्यकता है। भेद-भावना अज्ञान या माया द्वारा रचित एक भ्रम-मात्र है।

अहैतुक और नि:स्वार्थ सेवा के प्रति तीव्र उत्साह का विकास करना चाहिए। सबके प्रति दया-भाव रखो; सबसे प्रेम करो; सबकी सेवा करो। सबके प्रति उदार बनो; सहिष्णु रहो। सबमें ईश्वर की सेवा करो और यही लक्ष्य-प्राप्ति का मार्ग है।

— स्वामी शिवानन्द

डोनेशन सम्बन्धी निर्देश

द डिवाइन लाइफ सोसायटी को भेजी जाने वाली दानराशि ऋषिकेश में देय बैंकड्राफ्ट अथवा चेक अथवा इलेक्ट्रानिक मनी आर्डर (E.M.O.) द्वारा "The Divine Life Society", Shivanandanagar, Uttarakhand के नाम भेजी जा सकती है। कृपया ड्राफ्ट अथवा चेक अथवा ई. एम. ओ. के साथ एक पत्र में दानराशि का उद्देश्य, अपना डाक पता, फोन नम्बर, ईमेल आई डी तथा पैन नम्बर लिखकर भेजें।

ऑनलाइन डोनेशन

जो दानराशि भेजने हेतु ऑनलाइन डोनेशन सुविधा का उपयोग करना चाहते हैं, वे वेब एड्रेस https://donations.sivanandaonline.org के माध्यम से अथवा हमारी वेबसाइट www.sivanandaonline.org में दिये गये 'ऑनलाइन डोनेशन' लिंक के माध्यम से इसका उपयोग कर सकते हैं।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्यालय के सदस्यता-शुल्क एवं शाखाओं के सम्बद्धता-शुल्क की दरें

१. नवीन सदस्यता-शुल्क*		₹ १५०/-
प्रवेश-शुल्क	₹ ५०/-	
सदस्यता-शुल्क	₹ १००/-	
२. सदस्यता नवीकरण-शुल्क (वार्षिक)		₹ १००/-
३. नयी शाखा खोलने का शुल्क**		₹ १०००/-
प्रवेश-शुल्क	₹ ५००/-	
सम्बद्धता-शुल्क	₹ ५००/-	
४. शाखा-सम्बद्धता नवीकरण शुल्क (वार्षिक)		₹ ५००/-

* सदस्यता के इच्छुक प्रार्थी कृपया प्रार्थना-पत्र के साथ अपना फोटो पहचान-पत्र (Photo Identity) तथा निवास-स्थान के प्रमाण-स्वरूप कोई दस्तावेज (Residential Proof) भेजें।

**नयी शाखा खोलने के लिए मुख्यालय से लिखित अनुमति लेनी होगी।

⇨ कृपया सदस्यता-शुल्क और शाखा-सम्बद्धता-शुल्क ऋषिकेश में स्थित किसी भी बैंक के नाम बने डिमांड ड्राफ्ट अथवा चेक द्वारा भेजें।

डी एल एस शाखाओं के प्रतिवेदन

भारतीय शाखाएँ

बरगढ़ (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक आरती, सोमवारों को रुद्राभिषेक, गुरुवारों को गुरु पादुका पूजा की जाती रही।

चाँदपुर (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक पूजा, साप्ताहिक सत्संग शनिवार को, गुरु पादुका पूजा गुरुवार को और चल सत्संग ८ और २४ को किये जाते रहे। ८ सितम्बर को सद्गुरुदेव का १३३ वाँ जयन्ती दिवस भजन, पादुका पूजा और गुरुदेव के जीवन एवं शिक्षाओं पर प्रवचनों सहित मनाया गया। विश्व-शान्ति हेतु १६ सितम्बर और १७ अक्तूबर को सुन्दरकाण्ड का पारायण किया गया। २४ को परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज का १०४ वाँ जयन्ती दिवस पादुका पूजा, भजन-कीर्तन एवं प्रवचनों सहित मनाया गया।

छत्रपुर (ओडिशा): शाखा द्वारा ८ सितम्बर को सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का जयन्ती दिवस तथा २४ को परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज का जन्मोत्सव पादुका पूजा सहित मनाया गया और कुष्ठबस्ती में फल-मिठाइयाँ बाँटी गयीं। शाखा के साप्ताहिक सत्संग गुरुवार को चलते रहे।

चंडीगढ़ (यू.टी.): शाखा द्वारा रविवारों को नारायण मन्त्र, महामृत्युञ्जय मन्त्र, भजन-कीर्तन इत्यादि सहित ऑन लाइन साप्ताहिक सत्संग चलते रहे। परम पूज्य सद्गुरुदेव की जयन्ती ८ सितम्बर को तथा परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की जयन्ती २४ सितम्बर को पुष्पांजलि, भजन और कीर्तन सहित मनायी गयी। ८ से २४ सितम्बर तक रामायण पाठ आयोजित किया गया।

करावडी (आन्ध्र प्रदेश): सद्गुरुदेव की १३३ वीं जयन्ती ८ सितम्बर को तथा परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की १०४ वीं जयन्ती २४ सितम्बर को पादुका पूजा, भजन और कीर्तन सहित मनायी गयी। ६ को अखण्ड सहस्रनाम यज्ञ और २३ को नक्षत्रमाला पारायण आयोजित किया गया। इसके अतिरिक्त श्री विष्णुसहस्रनाम, लक्ष्मी अष्टकम् तथा हनुमान चालीसा का पाठ भी चलता रहा।

लखनऊ (उत्तर प्रदेश): कोविड-१९ के समय में शाखा द्वारा महामृत्युञ्जय मन्त्र जप प्रतिदिन नियमित रूप से चलता रहा।

नाभा (पंजाब): शाखा द्वारा दैनिक प्रार्थनाएँ, स्वाध्याय, महामृत्युञ्जय मन्त्र जप,

महामन्त्र संकीर्तन और भजनों सहित सत्संग किये जाते रहे।

नन्दिनीनगर (छत्तीसगढ़): शाखा द्वारा सितम्बर-अक्तूबर मास में दैनिक प्रातःकालीन प्रार्थना और सायंकालीन सत्संग विष्णुसहस्रनाम पारायण सहित किये जाते रहे। सद्गुरुदेव की १३३ वीं जयन्ती ८ सितम्बर को पादुका पूजा सहित मनायी गयी। १७ से २५ अक्तूबर तक दुर्गा नवरात्रि ज्योति कलश स्थापना, दुर्गा अष्टोत्तरशतनामावली पाठ और हवन सहित मनायी गयी। २५ को कन्या पूजा की गयी।

पंचकूला (हरियाणा): सद्गुरुदेव की जयन्ती ८ को तथा परम पूज्य श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज की जयन्ती २४ सितम्बर को शाखा द्वारा मनायी गयी। इन पावन अवसरों के उपलक्ष्य में नारायण सेवा की गयी तथा दूध, ब्रैड और दलिया रोगियों को बाँटा गया। इसके अतिरिक्त रविवारों को सत्संग किये जाते रहे।

राउरकेला (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक योग-कक्षाएँ, पादुका पूजा, भजन-कीर्तन, अर्चना और विष्णुसहस्रनाम सहित गुरुवारों को साप्ताहिक और रविवारों को चल सत्संग इत्यादि के कार्यक्रम चलते रहे। शाखा का वार्षिकोत्सव २२ अक्तूबर को मनाया गया।

स्टील टाउनशिप, राउरकेला (ओडिशा): शाखा द्वारा सितम्बर-अक्तूबर मास में ८ को शिवानन्द जयन्ती तथा २४ को चिदानन्द जयन्ती मनायी गयी। इसके अतिरिक्त चल सत्संग, गुरुवारों को गुरु पादुका पूजा, शनिवारों को स्वाध्याय, सोमवारों को योग एवं संगीत की निःशुल्क कक्षाएँ पूर्ववत् चलती रहीं।

विशाखपत्तनम् (आन्ध्र प्रदेश): शाखा द्वारा सोमवारों को शिवाभिषेकम्, मंगलवारों को आञ्जनेयाभिषेकम्, शुक्रवारों को दुर्गा पूजा के कार्यक्रम किये गये। इसके अतिरिक्त त्रयोदशी को हवन एवं पूर्णिमा को सत्यनारायण पूजा की जाती रही। ८ को शिवानन्द जयन्ती पादुका पूजा तथा गान-संकीर्तन सहित मनायी गयी।

बीकानेर (राजस्थान): शाखा की नियमित गतिविधियाँ यथा : दैनिक सर्व देव पूजा-अभिषेक एवं अर्चना, विशेष दिनों को विशेष पूजा, स्वाध्याय, दैनिक एवं साप्ताहिक सत्संग, पुस्तकालय द्वारा ज्ञान प्रचार, योगासन कक्षाएँ तथा छात्रवृत्ति इत्यादि की सेवाएँ पूर्ववत् चलती रहीं। विशेष गतिविधियों में ८ सितम्बर को सद्गुरुदेव की तथा २४ को परम पूज्य गुरुमहाराज की जयन्ती पर पादुका पूजा, अर्चना, प्रवचन, भजन-कीर्तन, आरती

एवं प्रसाद वितरण किया गया। १७ से २५ अक्तूबर को नवरात्रि पर अखण्ड ज्योति प्रज्वलन, दुर्गासप्तशती का पाठ किया गया। रामचरितमानस का नवाह्न पारायण अपने-अपने आवास-स्थानों पर किया गया। पुरुषोत्तम मास में रामायण का मास-पारायण तथा दान इत्यादि किया गया। ३१ को शरद पूर्णिमा पर मन्दिर में खीर प्रसाद वितरित किया गया।

राजा पार्क शाखा, जयपुर (राजस्थान): शाखा की समस्त गतिविधियाँ यथावत् चलती रहीं। विशेष कार्यक्रमों में : ८ सितम्बर को शिवानन्द जयन्ती, ॐ नमो भगवते शिवानन्दाय मन्त्र जप सहित पादुका पूजा, आरती और फल प्रसाद वितरण किया गया। २४ को चिदानन्द जयन्ती पर चिदानन्द नामावली सहित पादुका पूजा, आरती और फल प्रसाद का वितरण किया गया।

निष्काम कर्मयोग की साधना में न लाभ है, न हानि। उसमें कोई खतरा नहीं है। न उसमें शास्त्रों का उल्लंघन है। इसका अल्प ज्ञान भी और इसकी अल्प साधना भी जन्म-मरण के महाभय से और उसके सहचारी पापों से हमें बचा सकती है। कर्मयोग के इस मार्ग से अर्थात् ज्ञान के द्वारा निश्चित ही फल-प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं है। पदार्थ अविनाशी है। शक्ति अविनाशी है। सही मनोभाव से की गयी अल्प साधना भी चित्त शुद्ध करती है। चित्त में सत्कर्मों के संस्कार बने रहते हैं, वे भी अविनाशी हैं। वे ही हमारी सच्ची सम्पत्ति हैं। वे हमें असत् कर्म करने से बचाते हैं। वे शुद्ध और नि:स्वार्थ सेवा करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे हमें लक्ष्य की ओर खींच ले जाते हैं। नि:स्वार्थ कर्म हममें ज्ञान-बीज ग्रहण करने के लिए आवश्यक मनोभूमिका तैयार करते हैं। कर्मयोग का मार्ग निश्चित रूप से हमें अनन्त आत्मानन्द की ओर ले जाता है।

नि:स्वार्थ हो कर अनासक्त भाव से कर्म करो। अपनी वृत्ति को परखो। वृत्ति पूर्णतया शुद्ध होनी चाहिए। वृत्ति के अनुसार परिणाम भी भिन्न होता है। एक कहानी है। हनुमान घाट पर एक लड़की डूब रही थी। दो लड़के तुरन्त नदी में कूद पड़े और लड़की को बचा लिया। एक ने कहा कि 'उस लड़की से मैं विवाह करूँगा।' दूसरे ने कहा : ''मैंने अपना कर्तव्य किया है। भगवान् ने मुझे अपनी उन्नति कर लेने का यह अवसर दिया है।'' इसका चित्त शुद्ध हुआ। बाहरी क्रिया दोनों की समान है, लेकिन दोनों की वृत्ति भिन्न थी। अत: दोनों को फल भी भिन्न मिलना चाहिए। कभी फल की चिन्ता न करो। लेकिन कर्म के प्रति असावधानी भी न बरतो, न निष्क्रिय ही रहो। देश और मानवता की सेवा में अपनी सारी शक्ति उँडेल दो। नि:स्वार्थ सेवा में कूद पड़ो।

— स्वामी शिवानन्द

हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकों की नवीनतम सूची

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज कृत

अच्छी नींद कैसे सोयें	₹ ७०/-
अध्यात्मविद्या	१४०/-
कर्म और रोग	२५/-
कर्मयोग-साधना	१३०/-
गीता-प्रबोधिनी	५५/-
गुरु-तत्त्व	५५/-
घरेलू चिकित्सा	१९०/-
जपयोग	१२०/-
जीवन में सफलता के रहस्य	१८५/-
ज्योति, शक्ति और प्रज्ञा	४०/-
दिव्योपदेश	३५/-
देवी माहात्म्य	११५/-
धनवान् कैसे बनें	५०/-
धारणा और ध्यान	१७०/-
ध्यानयोग	१३०/-
प्राणायाम-साधना	७५/-
बालकों के लिए दिव्य जीवन सन्देश	१००/-
ब्रह्मचर्य-साधना	११०/-
भगवान् शिव और उनकी आराधना	१५०/-
भगवान् श्रीकृष्ण	१३०/-
मन : रहस्य और निग्रह	२०५/-
मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म	१३५/-
मानसिक शक्ति	१३०/-
मूर्तिपूजा का दर्शन और महत्त्व	३०/-
मैं इसका उत्तर दूँ?	१३०/-
श्रीमद्भगवद्गीता	४२५/-
योगाभ्यास का मूलाधार	१८५/-
योगवासिष्ठ की कथाएँ	९०/-
योगासन	११५/-
विद्यार्थी-जीवन में सफलता	६०/-
शिवानन्द-आत्मकथा	₹ १२०/-
सत्संग भजन माला	१६०/-
सत्संग और स्वाध्याय	६०/-
सद्गुणों का अर्जन एवं दुर्गुणों का नाश किस प्रकार करें	१९५/-
सन्त-चरित्र	२३५/-
सौ वर्ष कैसे जियें	९५/-
साधना	३२०/-
स्वरयोग	८०/-
हठयोग	१००/-
हिन्दूतत्त्व-विवेचन	१६०/-

श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज कृत

अध्यात्म-प्रसून	३५/-
आलोक-पुंज	१०५/-
ज्योति-पथ की ओर	१०५/-
त्याग : शरणागति	२५/-
भगवान् का मातृरूप	७०/-
मोक्ष सम्भव है!	२५/-
योग-सन्दर्शिका	५५/-
शाश्वत सन्देश	५५/-
शोकातीत पथ	१४०/-
साधना सार	३५/-

अन्य लेखक कृत

एकादशोपनिषदः (मूल मन्त्राः)	१४०/-
गुरुदेव कुटीर में भजन-कीर्तन	५०/-
चिदानन्दम्	२००/-
जीवन-स्रोत	१५०/-
शारीरकमीमांसादर्शनम्	१५/-
शिव स्तोत्र माला	३५/-
श्रीमद्भगवद्गीता (मूलमात्रम्)	१००/-
सर्वस्नेही हृदय	१००/-
दिव्य योगा	९०/-

५०% अग्रिम। पैकिंग अतिरिक्त । विस्तृत जानकारी के लिए निम्नांकित पते पर सम्पर्क करें :

द डिवाइन लाइफ सोसायटी, पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२, जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

फोन : ०१३५-२४३४७८०, २४३००४०; E-mail : bookstore@sivanandaonline.org

For online orders and Catalogue : dlsbooks.org

<u>**NEW RELEASE!**</u>

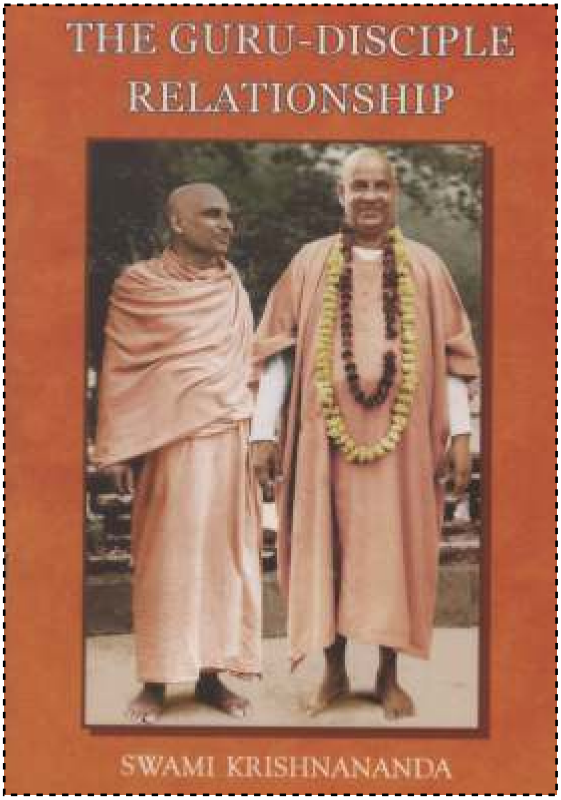

The Guru-Disciple Relationship

Pages: 64 Price: ₹ 40/-

With great joy, we are bringing out the booklet 'The Guru-Disciple Relationship' by Worshipful Sri Swami Krishnanandaji Maharaj which consists of an informal discourse given by Pujya Swamiji Maharaj in 1974.

Mind its Mysteries and Control	**Swami Sivananda**	**Price: ₹ 325/-**
Concentration and Meditation	**Swami Sivananda**	**Price: ₹ 285/-**
World Peace	**Swami Sivananda**	**Price: ₹ 120/-**
Health and Diet	**Swami Sivananda**	**Price: ₹ 120/-**
The Quintessence of The Upanishad	**Swami Chidananda**	**Price: ₹ 50/-**
Yoga Sutras of Patanjali	**Dr. (Mrs.) Sita K. Nambiar**	**Price: ₹ 70/-**

बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक नियम

(परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

१. **ब्राह्ममुहूर्त-जागरण**—नित्यप्रति प्रातः चार बजे उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. **आसन**—पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आधे घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः-शनैः तीन घण्टे तक बढ़ाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। हलके शारीरिक व्यायाम (जैसे टहलना आदि) नियमित रूप से कीजिए। बीस बार प्राणायाम कीजिए।

३. **जप**—अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र (जैसे **'ॐ'**, **'ॐ नमो नारायणाय'**, **'ॐ नमः शिवाय'**, **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**, **'ॐ श्री शरवणभवाय नमः'**, **'सीताराम'**, **'श्री राम'**, **'हरि ॐ'** या गायत्री) का १०८ से २१,६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए (मालाओं की संख्या १ और २०० के बीच)।

४. **आहार-संयम**—शुद्ध सात्त्विक आहार लीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। आवश्यकता से अधिक खा कर पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पखवाड़े के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध तथा फल एकाग्रता में सहायक होते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषधि के समान लीजिए। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक माह के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. **ध्यान-कक्ष**—ध्यान-कक्ष अलग होना चाहिए। उसे तालेकुंजी से बन्द रखिए।

६. **दान**—प्रतिमाह अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. **स्वाध्याय**—गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, बाइबिल, जेन्दअवस्ता, कुरान आदि का आधा घण्टे तक नित्य स्वाध्याय कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. **ब्रह्मचर्य**—बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. **स्तोत्र-पाठ**—प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान आरम्भ करने से पहले उनका पाठ कीजिए। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायेगा।

१०. **सत्संग**—निरन्तर सत्संग कीजिए। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। बुरी आदतों में न फँसिए।

११. **व्रत**—एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. **जप-माला**—जप-माला को अपने गले में पहनिए अथवा जेब में रखिए। रात्रि में इसे तकिये के नीचे रखिए।

१३. **मौन-व्रत**—नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत कीजिए।

१४. **वाणी-संयम**—प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

१५. **अपरिग्रह**—अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं, तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ताएँ त्यागिए। सादा जीवन व्यतीत कीजिए तथा उच्च विचार रखिए।

१६. **हिंसा-परिहार**—कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए **(अहिंसा परमो धर्मः)**। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से नियन्त्रित कीजिए।

१७. **आत्म-निर्भरता**—सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. **आध्यात्मिक डायरी**—सोने से पहले दिन-भर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. **कर्तव्य-पालन**—याद रखिए, मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में न चूकिए। सदाचारी बनिए।

२०. **ईश-चिन्तन**—प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर को पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

यह समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। अपने मन को ढील न दीजिए।

Registrar of Newspapers for India
No. 71610/1999

Postal-Registration No. TRI/005/2018-20

दिसम्बर २०२०

LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
(Licence No. WPP No. 02/18-20, Valid upto: 31-12-2020)
Posted at Shivanandanagar, Tehri-Garhwal, Uttarakhand
DATE OF POSTING : 20TH OF EVERY MONTH:
P.O. SHIVANANDANAGAR—249192

साधक की योग्यता

कैंची, सुई और धागे के बिना कपड़ा-सिलाई का काम नहीं होता, फावड़े के बिना भूमि नहीं खुदती; इसी प्रकार विवेक, वैराग्य, शम-दमादि षड्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व रूपी चार साधनों को अपनाये बिना ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। निःस्वार्थ सेवा अथवा निष्काम्य कर्मयोग के द्वारा हृदय को शुद्ध किये बिना वेदान्त के उपदेश मन में प्रवेश नहीं कर सकते।

साधक की निम्नांकित योग्यताओं को प्राप्त किये बिना किसी की कोई अवतारी पुरुष भी सहायता नहीं कर सकता। वे योग्यताएँ हैं—सन्तोष, वीतरागता, निस्पृहता, सर्वसंग-परित्याग, आस्तिक्य, सदाचार, जितेन्द्रियत्व, सच्चा और स्थायी वैराग्य, दृढ़ निश्चय, धैर्य, अध्यवसाय, आज्ञाकारिता, नम्रता आदि।

वेदान्त का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी की सर्वप्रथम योग्यता यह है कि उसमें सत्य के अन्वेषण की उत्कट अभिलाषा हो। सत्य के साक्षात्कार की यह अभिलाषा उसे सतत जीवित रखनी चाहिए। साधक के लिए यही मूलभूत योग्यता है। यह एक गुण उसमें आ जाये, तो फिर बाकी सारे गुण अपने-आप आ जायेंगे, सभी योग्यताएँ स्वयं प्राप्त होंगी। उसके बाद ही वह सत्य-मार्ग का अनुयायी हो सकेगा।

—— स्वामी शिवानन्द

सेवा में

'द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी' की ओर से स्वामी अद्वैतानन्द द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से मुद्रित तथा 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्य कार्यालय, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से प्रकाशित। फोन : ०१३५-२४३००४०, २४३११९०
E-mail: generalsecretary@sivanandaonline.org ; Website : www.sivanandaonline.org ; www.dlshq.org
सम्पादक : स्वामी निर्लिप्तानन्द